Printed and Published by K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

# प्रस्तावना

सच्चिदानन्द घन की कृपा से आज हम भाषा-काव्यरसिकों के समक्ष आनन्द और संकोच के साथ महाकवि देवदत्तजी की रचनाओं का संक्षिप्त संग्रह उपस्थित करते हैं। इस संग्रह में कई सौ छन्दों का संकलन है। आनन्द इसलिए है कि साहित्यानुरागियों को एक लब्धप्रतिष्ठ कवि की सुललित रचनाओं के रसास्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा और संकोच इसलिए है कि कुछ लोग इसे शृङ्गार-प्रधान होने के कारण उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे। इसके प्रति क्षोभ प्रकट करनेवाले वे ही सज्जन होंगे जो विशुद्ध तथा पवित्र शृङ्गार के वास्तविक सौंदर्य एवं रहस्य को न समझकर वासनिक प्रवाह में बहते हैं और शृंगारी रचनाओं को अश्लीलता एवं दुश्चरित्रता की जननी समझते हैं। किन्तु यह अपनी अपनी रुचि की बात है।

प्रस्तुत संग्रह देवजी की सुप्रसिद्ध रचनाओं से किया गया है। अष्टयाम, भावविलास, भवानीविलास, रसविलास, प्रेमचन्द्रिका, सुखसागर-तरंग, सुजान-विलास एवं शब्दरसायन की सहायता लेने की हमने चेष्टा की। इनमें से कुशलविलास की हस्तलिखित प्रतिलिपि हिन्दुस्तानी एकेडमी की कृपा से प्राप्त हुई और सुखसागर-तरंग कानपुर-निवासी पं० कृष्णबिहारी शुक्ल से।

हमारे विचार में इस संग्रह के सभी छन्द सुन्दर हैं।

देवजी लगभग ५२ ग्रन्थों के रचयिता बतलाये जाते हैं। ग्रन्थ बनाने में उनको इसलिए देर नहीं लगती थी कि वे प्रायः एक ही छन्द को अपने भिन्न भिन्न ग्रन्थों में यथास्थान सन्निविष्ट कर दिया करते थे। इनके एक ही छन्द में भिन्न भिन्न रस, अलंकार, भाव, गुण, वृत्ति, ध्वनि इत्यादि का सन्निवेश रहा करता था। अतः एक ही छन्द कई साहित्यिक विषयों के उदाहरणों के लिए पर्य्याप्त था। इसी लिए इस संग्रह में भी सुललित छन्दों की एकाधिक बार आवृत्ति हो जाना सम्भव है। अपने सहयोगी समालोचकों की रचनाओं से इस पुस्तक की रचना करने में सहायता मिली है। अतः श्रीयुक्त मिश्रबन्धुओं एवं कृष्णविहारी मिश्र को धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है। साथ ही पं० श्यामविहारी शर्म्मा, पं० गणेशप्रसाद चतुर्वेदी आदि के भी हम कृतज्ञ हैं, जिनकी कृपा से हमें देवजी की अलभ्य रचनाओं से संग्रह करने का अवसर मिला।

प्रयाग<br>शिवरात्रि, सं० १९९५

हरदयालु सिंह

# विषय-सूची

# देव-दर्शन

## मङ्गलाचरण

एकै पग सोहत बिभूति सिव आभरन,
दूजे पग नेवदार जावक जरे रहैं।
एकै कर पन्नग को कंकन बिराजै चारु,
दूजे कर चूरिन की सुषमा सजे रहैं॥
आधे भाल राजत है गङ्ग की तरङ्ग तुङ्ग,
आधे भाल लाल लाल सेंदुर भरे रहैं।
पापनि नसावैं दुःख-द्वन्दनि दुरावैं,
सोई गिरिजा गिरीस जग मंगल करे रहैं॥

## महाकवि देवदत्त का जीवन-चरित

दो०—तुलसी ससि पुनि सूर रवि, केसव उडु, उपमान।
दै भाषा में देव छवि, केवल देव समान॥

हिन्दी-साहित्य के सूर्य महाकवि सूरदास और चन्द्रमा गोस्वामी तुलसीदास तथा नक्षत्र-स्वरूप आचार्य केशवदास के साथ महाकवि देवदत्त की तुलना करते हुए सिद्धान्तों के

कहा था कि देव वह व्योम-मंडल है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रादिक सभी अपनी अपनी कक्षा में घूमा करते हैं। इस उक्ति में वास्तविक तथ्य है। इसी तथ्य का निरूपण हम आगे चलकर यथास्थान उदाहरणों द्वारा करेंगे। हमारी धारणा है कि यदि हिन्दी-साहित्य में पक्षपात-पूर्ण मनोवृत्ति से काम न लिया जाय या महाकवि की रचनाओं के साथ उनके त्याग और तपस्या के अङ्क न जोड़े जायँ तो अवश्य महाकवि देवदत्त के सामने प्रतियोगिता में कोई नहीं ठहर सकता।

महाकवि देवदत्त का जन्म विक्रमीय सं० १७३० में इटावे में हुआ था, जैसा उन्होंने स्वयं कहा है "द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाये वास।" इसके अतिरिक्त उन्होंने 'भावविलास' में कहा है कि सोलहवें वर्ष के चलते ही संवत् १७४६ में उन्होंने यह ग्रन्थ बनाया था। संवत् १७४६ में देवदत्त की अवस्था सोलह वर्ष की थी; अतः इनका जन्माब्द १७३० ही माना जायगा। कुछ लोग मैनपुरी को इनका जन्मस्थान होने का श्रेय देते हैं। बहुत सम्भव है कि उस समय मैनपुरी और इटावा के ज़िले सम्मिलित रहे हों, जैसा कि बहुत दिन तक रह चुके हैं।

देव कवि कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इटावा शहर के पंसारी टोला वल्लालपुरा में रहते थे। इनके वंशज अब भी मैनपुरी मण्डलान्तर्गत कुसमरा ग्राम में रहते हैं। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्मस्थान 'समाना गाँव' माना है। वह भी मैनपुरी में ही है। इनके पिता का नाम [illegible]

था। उनके व्यवसाय एवं शिक्षा-दीक्षा के विषय में कोई बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती।

कविवर देव सरस्वती के उन वरद पुत्रों में थे, जिन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में ही भावविलास ऐसे सुन्दर रीति-ग्रन्थ लिखने की क्षमता पाई थी। यदि महाकवि भवभूति की तरह ये भी दर्पोक्ति में कहते कि—

वचन के बस जासु सरस्वती
करति काज सदा गृहभामिनी।

तो इसमें कोई अत्युक्ति न होती। क्योंकि इन्हीं वीणा-पाणि के प्रसाद से देव कवि लगभग ५२ या ७२ ग्रन्थों के प्रणेता माने जाते हैं, जिनमें से आधे ग्रन्थों को मुद्रण का भी सौभाग्य प्राप्त हो सका है।

जिस समय महाकवि देवदत्त की कविता-मरीचि-मालिकाएँ दिगन्तों को धवलित कर रही थीं, उस समय दिल्ली के राज्य-सिंहासन पर मुगल-कुल-धूमकेतु औरङ्गज़ेब था। इसके तृतीय पुत्र का नाम आज़मशाह था। यह बड़ा ही गुणज्ञ, वीर एवं साहित्यानुरागी था। इसी ने बिहारी-सतसई को क्रम-बद्ध कराया था। इसी लिए सतसई का आज़मशाही क्रम प्रसिद्ध है। कविवर देवदत्त को इसी का आश्रय मिला। इसने देव के अष्टयाम और भावविलास को ध्यान-पूर्वक सुना और उसकी प्रशंसा की थी। यह घटना संवत् १७४६ की है। यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि देव की

भेंट आज़मशाह से कहाँ हुई थी; दिल्ली में या दक्षिण में? इतिहास के अनुशीलन से सिद्ध होता है कि उस समय औरङ्गज़ेब दक्षिण की रियासतों को ध्वंस करने में लगा था, और राजकुमार आज़मशाह उसी की संरक्षकता में सैन्य-संचालन करता था। इसी काल में महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के पुत्र शम्भाजी का विराध-वध किया गया था, जिनका एकमात्र अपराध यह था कि वे राजबन्दी होकर भी औरङ्गज़ेब के इच्छानुसार धर्म-परिवर्तन के लिए तैयार न थे। परम प्रतिभा-सम्पन्न देव को आज़मशाह जैसा उदारहृदय आश्रय-दाता मिलना नितान्त स्वाभाविक था। उनके कवित्व का यही ईश्वर-दत्त उपहार था।

जिस प्रकार चक्रनेमि ऊपर-नीचे जाते-आते हैं, उसी प्रकार भाग्य-रेखा भी चलती रहती है। जिसकी उन्नति चरम सीमा तक पहुँच जाती है, उसका ह्रास भी होता है। संवत् १७५१ के लगभग विधि-विडम्बना-वश औरङ्गज़ेब की शनि-दृष्टि आज़मशाह पर पड़ी। वह प्रकारान्तर से छिन्नविभव होकर दूरस्थ गुजरात प्रान्त का शासक बनाया गया, और राजकुमार मोअज्ज़म औरङ्गज़ेब का कृपापात्र हुआ। संवत् १७६४ में औरङ्गज़ेब का देहान्त हुआ और चारों राजकुमारों में मयूर-सिंहासन के लिए युद्ध होने लगा। इस युद्ध में आज़मशाह मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ देव कवि का सम्पर्क भी दिल्ली-दरबार से छूट गया। ऐसी दशा में देव ने किसी आश्रय-दाता की खोज में या तीर्थाटन के लिए लम्बी यात्रा की होगी, और उस यात्रा

के ही सम्बन्ध में इन्होंने भारत के भिन्न भिन्न देशों और नगरों का निरीक्षण किया होगा तथा वहाँ के निवासियों की वेश-भूषा, रहन-सहन इत्यादि को भली भाँति देखकर जाति-विलास की रचना की होगी। इस सुदीर्घ यात्रा मे प्राप्त अनुभव को देव व्यर्थ कैसे करते ?

कहते हैं कि देव बड़े ही रूपवान् थे। उनकी वाणी बड़ी मधुर थी। स्वाभिमान उनमें कूट कूटकर भरा था। वे पुराने ढंग का बड़े घेर का जामा पहनते थे, और सिर पर पगड़ी लगाते थे। इनके वाक्सिद्ध कवीश्वर होने के सम्बन्ध में एक दन्त-कथा प्रचलित है। एक बार देव भरतपुराधीश महाराज जवाहिरसिंह से मिलने गये। उस समय डीग के दुर्ग का निर्माण हो रहा था। महाराज ने इनसे कविता सुनाने का आग्रह किया, परन्तु देव ने उस समय सुनाना स्वीकार नहीं किया और कहा कि इस समय सरस्वती मौनावलम्बन किये हुए है। परन्तु महाराज के बार-बार आग्रह करने पर इन्होंने कई छन्द सुनाये। दुर्भाग्य-वश इनके मुख से इस आशय का भी एक छन्द निकल गया कि डीग दुर्ग में मनुष्यों के सिर लुढ़कते फिरेंगे।

एक राजा के सामने ऐसी निर्भीकता के साथ स्पष्ट बात कहना कोई साधारण बात न थी। पर देव ऐसे सात्विक कवि का ही काम था जो सरस्वती की आज्ञा की अवहेलना न करके स्पष्ट बात कह दे। महाराज को देव की यह स्पष्टवादिता पसन्द न आई होगी, और कदाचित् इन्हें पुरस्कार भी न मिला

होगा। पर देव को इसकी क्या चिन्ता थी। कहते हैं कि देव की भविष्यवाणी सर्वथा ठीक निकली।

दिल्ली-दरबार से अलग होकर देव अपने लिए किसी सुयोग्य गुणग्राही आश्रयदाता की खोज में रहे। अन्त में इन्हें भवानीदत्त वैश्य का आश्रय मिला। इन्हीं के नाम पर आपने 'भवानीविलास' नामक ग्रन्थ की रचना की। परन्तु यहाँ भी देव टिके नहीं। कुछ समय के बाद आप इटावा के शुभकर्णसिंह सेंगर के पुत्र कुशलसिंह के यहाँ गये और उनके नाम पर 'कुशलविलास' बनाया। इसके बाद आपको राजा उद्योतसिंह का आश्रय मिला। उद्योतसिंह के पिता का नाम मर्दनसिंह था। उद्योतसिंह बड़े साहित्यानुरागी थे। इनके नाम पर देव ने 'प्रेमचन्द्रिका' की रचना की है।

इन तीनों ग्रन्थों में देव ने अपने आश्रय-दाताओं का नामोल्लेख तो किया है, परन्तु उनकी प्रशंसा में छन्द नहीं कहे। अपने आश्रयदाता के प्रति कवि की इतनी उदासीनता और शब्द-कृपणता का कारण समझ में नहीं आता। संभव है, इसका कारण वही स्पष्टवादिता हो, या देव ने अपने आश्रयदाताओं में वे गुण न देखे हों जिन पर मुग्ध होकर कवि को उनकी प्रशंसा करने की प्रवृत्ति होती है। अथवा यह भी संभव है कि इन लोगों ने देव का यथेष्ट आदर न किया हो, अथवा इनका आदर उन्हें न जँचा हो। क्योंकि ये सम्राट् का आदर प्राप्त कर चुके थे। अथवा इनके आर्थिक आदर के

साथ गुणग्राहकता और सम्मान का अभाव रहा हो, जिससे देव ने इनकी प्रशंसा न की हो। अन्यथा कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि हजारों छन्दों का बनानेवाला कवि अपने आश्रयदाता के प्रति इस प्रकार मौन रहे। यदि कहा जाय कि देव की मनोवृत्ति ही ऐसी थी या उनमें कृतज्ञता-प्रकाशन के भाव ही न थे, तो ऐसा अनुमान नितान्त निर्मूल होगा। अवाक् पशु में भी कृतज्ञता-प्रकाशन के भाव होते हैं, फिर देव ऐसे उदारहृदय कवि में इसका अभाव कब सम्भव है? देवदत्त ने तो अपने गुण-ग्राही सुयोग्य आश्रयदाता के प्रति भूरि भूरि कृतज्ञता-प्रकाशन के भाव व्यक्त किये हैं; परन्तु उन्होंने ऐसा तभी किया है जब उनके विचार में वह व्यक्ति वास्तव में उस सम्मान का पात्र था।

संवत् १७८३ में देवदत्त को राजा भोगीलाल का आश्रय प्राप्त हुआ। मालूम होता है कि भोगीलाल बड़े ही गुणग्राही और कवियों के कल्पतरु रहे होंगे। इनके नाम पर देव ने 'रस-विलास' नामक ग्रन्थ की रचना की और इसके पुरस्कार स्वरूप राजा साहब ने इन्हें दान-दक्षिणा से सन्तुष्ट किया। भोगीलाल की प्रशंसा कवि ने इस प्रकार की है—

दोहा

देव सुकवि ताके कहे राग, रस, सुरतान।
'रसविलास' सुनि रीझिहैं 'भोगीलाल' सुजान॥

घनाक्षरी

भूलि गये भोज, बलि, बिक्रम बिसरि गये,
जाके आगे और तन दौरत न दीदे हैं;
राजा, राव, राने, उमराव, उनमाने,
उन माने निज गुन के गरब गिरवीदे हैं।
सुवस बजाज जाके सौदागर सुकवि,
चलेई आवैं दसहू दिसान के उनीदे हैं;
भोगीलाल भूप लाख-पाखर लिवैया, जिन,
लाखन खरचि रचि आखर खरीदे हैं॥

सरस्वती के उपासक से लक्ष्मी कुछ रूठी सी रहती है; क्योंकि सपत्नी भाव रखने के कारण जहाँ पर सरस्वती निवास करती है वहाँ पर कमला नहीं रहती। लक्ष्मी ने स्पष्ट ही कहा है—

पीतः क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषात्
आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमानाथपूजानिमित्तं
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ युक्तं त्यजामि॥
(अज्ञात कवि)

कदाचित् इसी लिए महाकवि देवदत्त को स्थायी रूप से किसी सम्पन्न महापुरुष का आश्रय न प्राप्त हो सका। भोगीलाल के यहाँ कुछ मनमुटाव होने के कारण या तो देव टिक न सके अथवा उनका देहावसान हो गया, यह कुछ निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

जिस समय देव ने 'शब्द-रसायन' की रचना की थी, उस समय वे किसी के आश्रित न थे। इसी लिए वह किसी को समर्पित नहीं किया गया है। इसी प्रकार 'जातिविलास' भी किसी को समर्पित नहीं है। इसके बाद बहुत दिनों तक देव को कोई आश्रयदाता न मिला, परन्तु इसके अभाव में देव ने काव्य-रचना में कोई शिथिलता नहीं दिखलाई। अन्त में उन्हें पिहानी-निवासी अकबरअली खाँ का आश्रय प्राप्त हुआ और इन्होंने तब तक बनाई हुई सारी कविताओं को 'सुखसागर-तरंग-संग्रह' का नाम देकर इन्हीं महानुभाव के अर्पण किया।

## रचना का विवेचन

कहा जाता है कि देव ने ५२ ग्रन्थ बनाये हैं। कुछ लोग इन्हें ७२ ग्रन्थों का रचयिता बताते हैं। इस अधिकता का कारण यह प्रतीत होता है कि इनके सुन्दर सुन्दर छन्द कई ग्रन्थों में ज्यों के त्यों मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'जातिविलास' और 'रसविलास' ही को ले लीजिए। इनके पढ़ने से विदित होगा कि जो छन्द रसविलास में हैं, वही जातिविलास में हैं; और वही अन्य ग्रन्थों में भी। इससे हम इस अनुमान पर पहुँचते हैं कि देव यदि अपने ग्रन्थों के सुन्दर सुन्दर छन्दों को छाँटकर नये नये संग्रह तैयार किया करते थे। दूसरी बात यह भी है कि इनके एक ही छन्द में कई सुन्दर भाव, रस, अलंकार इत्यादि का सन्निवेश है। अतः साहित्य के भिन्न भिन्न

अङ्गों के उदाहरण देने के लिए वही एक छन्द काम में आ जाता था।

देव ने भर्तृहरि की तरह नीति और वैराग्यशतक भी लिखे हैं। वैराग्य का उदय स्वभावतः मनुष्य के हृदय में शृंगार के अनुभव के अनन्तर ही होता है, या उत्कृष्ट प्रेम पर ठेस लगने पर, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास और भर्तृहरि को हुआ था। यहाँ पर हम उन महानुभावों की चर्चा नहीं करते जिनमें ईश्वरदत्त विभूति के समान वैराग्य का अङ्कुर जन्म से ही होता है। देव ने जन्म भर शृंगारी रचनाएँ की थीं, और इसी शृंगार-प्रधान रचना करने के कारण वे शृंगारी कवियों के प्रमुख नेता कहे जाते थे। शृंगारी रचना करते करते अन्त में उनकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर हुई होगी और सो भी वृद्धावस्था में। इससे प्रतीत होता है कि वैराग्यशतक देव की वृद्धावस्था की रचना होगी।

इससे पहले देव ने रामचरित का आश्रय लेकर कोई काव्य भी लिखा होगा जो इस समय अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है; यद्यपि उसके सुन्दर सुन्दर छन्द इधर-उधर मिल जाते हैं। पाठकों के मनोविनोद के लिए हम निम्नलिखित छन्द उपस्थित करते हैं—

सवैया

अनुराग के रंगनि रूपतरंगनि, अंगनि ओप मनो उफनी।
'कवि देव' हिये सियरानी सबै, सिय रानी को देखि सोहाग सनी।

वर धामिनि वाम चढ़ी बरसैं, मुसकानि सुधा घनसार घनी।
सखियानि के आनन-इन्दुन तें अँखियानि की वन्दनिवार तनी।

कैसा सुन्दर और स्वाभाविक चित्र है। सीता की विदा हो रही है। अपनी अपनी अटारियों पर खड़ी हुई मिथिला की सुन्दरियाँ बरात की विदा देख रही हैं। वनिताएँ समान आकार की हैं। उनके मुख-मयङ्कों से नेत्र-इन्दीवरों की वन्दनवार सी बँधी मालूम होती है। महाकवि कालिदास ने भी इस भाव पर रघुवंश में लिखा है:—

अथ पथि गमयित्वा क्लृप्तरम्योपकार्य्ये
कतिचिदवनिपालः शर्वरीः सर्वकल्पः।
पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शनानाम्
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम् ॥

यदि कालिदास के श्लोक और देव के छन्द के भाव की तुलना की जाय तो विदित होगा कि देव की रचना में जैसा सौन्दर्य है, वैसा कालिदास की कृति में नहीं है।

इसी प्रकार रामचन्द्र के वनवासावधि समाप्त करके अयोध्या में पुनरागमन के समय कौशल्या का वर्णन देव ने किया है। कहना न होगा कि देव को जगज्जननी मिथिलानन्दिनी के प्रति कितनी श्रद्धा थी, यद्यपि वास्तव में हित हरिवंश सम्प्रदाय में शिष्य होने के कारण वे ब्रजाधीश श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द एवं वृषभानुनन्दिनी के उपासक थे—

भाग की भूमि सोहाग की भूषन, राजसिरी निधि लाज निवासू।
आई है मेरी दुहूँ कुल दीपक, धन्य पतिव्रत प्रेम प्रकासू।
लंक ते आई निसङ्क लिये सुख, सर्वसु वारति कौसिला सासू।
पाइन पैते उठाइ सियै, हिय लाइ बलाइ लै पोंछति आँसू॥

उपर्युक्त अवतरणों से सिद्ध होता है कि देव ने कोई रामपरक काव्य अवश्य लिखा होगा, जो समय के फेर से अब उपलब्ध नहीं है। देव के अन्तिम आश्रयदाता पिहानी-निवासी श्री अकबरअली खाँ थे। अकबरअली का समय संवत् १८२४ माना जाता है। इस समय देव की अवस्था ९४ वर्ष की थी। ५२ या ७२ ग्रन्थों को बनाकर ९४ वर्ष के वृद्ध से और कौन सी साहित्य-सेवा करने की आशा की जा सकती है? संभव है, वृद्धावस्था तक उनके हृदय में रसिकता का आभास रहा हो। संभव है, केशव की तरह वे रसिक भी रहे हों परन्तु मस्तिष्क-शक्ति का उसी प्रकार काम करते जाना हमारी समझ में कम आता है। यहाँ पर हम देव की तुलना उन महाकवि से नहीं करते जो ईश्वरीय कृपा के कारण १२६ वर्ष की अवस्था तक कविता करते रहे। 'सुखसागर तरङ्ग' के बाद की देव की और कोई रचना नहीं मिलती। इससे अनुमान होता है कि इन महाकवि का देहावसान लगभग ९४ वर्ष की अवस्था में संवत् १८२४ के लगभग हुआ होगा।

देव के बनाये हुए २९ ग्रन्थों का पता अब तक चला है। इनकी तालिका इस प्रकार है—

मुद्रित

| | |
|---|---|
| १ भावविलास | प्रयाग से प्रकाशित |
| २ अष्टयाम | भारतजीवन प्रेस, काशी। |
| ३ भवानीविलास | ,, |
| ४ सुजानविनोद | काशी-नागरीप्रचारिणी सभा। |
| ५ राग-रत्नाकर | ,, |
| ६ प्रेमचन्द्रिका | ,, |
| ७ रसविलास | भारतजीवन प्रेस, काशी। |
| ८ सुखसागरतरङ्ग | लखनऊ से प्रकाशित। |
| ९ जगद्दर्शन-पचीसी | अप्रकाशित — बालचन्द्र यन्त्रालय, जयपुर। |
| १० आत्म-दर्शन-पचीसी | |
| ११ तत्त्वदर्शन-पचीसी | |
| १२ प्रेम-पचीसी | |
| १३ शृंगारविलासिनी | |

हस्तलिखित

१४ प्रेमतरङ्ग, १५ कुशलविलास ( हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग के पुस्तकालय में रक्खी हुई ), १६ देवचरित्र, १७ जातिविलास, १८ शब्दरसायन, १९ देव-माया-प्रपंच नाटक ( अप्राप्य ग्रन्थ ), २० वृक्षविलास, २१ पावस-विलास, २२ रसानन्द-लहरी, २३ प्रेम-दीपिका, २४ सुमिल विनोद, २५ राधिकाविलास, २६ नख-शिख-प्रेम-दर्शन, २७ नीतिशतक, २८ वैद्यक ग्रन्थ ( मिश्रों के पुस्तकालय में रक्खा हुआ )।

थे। उन्होंने संस्कृत साहित्य से बहुत से भाव नहीं लिये, इसका कारण यह है कि वे मौलिकता के समर्थक थे। परन्तु उन्होंने संस्कृत के कवियों से जो भी भाव लिया है, उसको परिमार्जन करके ऐसा अपनाया है कि उस पर उनकी मुद्रा अंकित हो गई है। उन्होंने जो भाव लिये हैं, उन्हें उनके साहित्यिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लिया है न कि केशव की तरह पाण्डित्य-प्रदर्शनार्थ कोरे अनुवाद के लिए। संस्कृत-गर्भित पदावली के प्रयोग से प्रखर पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती। निष्कर्ष यह कि भावविलास अपने ढंग का एक सुन्दर ग्रंथ है। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं होता कि यह अपने समकक्ष भाषा के किसी रीति-ग्रंथ से विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से हीन नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि देव ऐसे ग्रंथ को १६ वर्ष की अवस्था में बना चुके थे। क्या यह उनकी लोकोत्तर एवं सर्वपथीन प्रखर प्रतिभा का परिचायक नहीं है ?

(२) अष्टयाम देव की द्वितीय रचना है। इसकी रचना भावविलास के साथ ही संवत् १७४६ में ही हुई थी। इसे देव ने औरंगजेब के पुत्र आजमशाह को सुनाया था और उसने इसकी प्रशंसा भी की थी। इसके विषय में देव ने भावविलास में लिखा है —

दिल्लीपति नवरंग के, आजमसाहि सपूत।
सुन्यौ सराह्यौ ग्रंथ यह, अष्टयाम संजूत॥

जैसे इस ग्रंथ का विषय थोड़ा है, उसी अनुपात से इसका कलेवर भी छोटा है। दिनचर्या के वर्णन के लिए ही यह बनाया गया है। इससे मालूम होता है कि उस समय के राजाओं के पास विलास को छोड़कर कोई काम ही नहीं था। इसमें न कोई पढ़ने-लिखने की चर्चा है, न देवाराधन की और न किसी राज्य-प्रबन्ध की। चर्चा है तो केवल विलासिता की। समझ में नहीं आता कि देव ऐसे उच्च कोटि के कवि ने राजाओं के लिए ऐसा विलासप्रधान टाइमटेबुल क्यों तैयार किया। इसके छंद सुन्दर हैं।

( ३ ) भवानीविलास दादरीपति राजा सीताराम-नन्दन भवानीदत्त वैश्य के नाम लिखा गया है। देव ने भवानीदत्त की प्रशंसा में इस प्रकार लिखा है—

> श्रीपति जेहि सम्पति दई, सतति सुमति सुनाम।
> स्वादरीक अति दादरी-पति नृप सीताराम॥
> सकलसिद्ध पति धर्मधुज सीताराम नरेंद्र।
> मानहु इन्द्र कुबेर सम, धैर्य सुमेरु गिरीन्द्र॥
> 'देव' हरि हर पर देव सरभर कियौ..
>         नील मरकत सरकत समान हौ।
> [illegible]
>         [illegible]
> सीतारामनन्दन भवानीदत्त '[illegible]'
>         [illegible]

सम्पति निधान साँझ भोर ससि भान,
महामान सनमानिबे को मान सनमान है॥

इस ग्रंथ में रसनिरूपण किया गया है। रसों की जैसी विशद व्याख्या की जानी चाहिए थी वैसी ही की गई है। देव ने वीर रस के तीन ही भेद किये हैं—युद्धवीर, दयावीर और दानवीर। परन्तु पद्माकर ने इनके अतिरिक्त एक धर्मवीर और भी बतलाया है। मम्मटाचार्य युद्धवीर को ही वास्तविक वीर रस के अंतर्गत मानते हैं।

( ४ ) सुजानविनोद भी नायिका-भेद-प्रधान है। ग्रंथ के प्रारम्भ में उपालम्भ काव्य की शैली पर कुछ छंद उद्धव के विषय में लिखे गये हैं और अन्त में ऋतुवर्णन है। इस ऋतुवर्णन में सेनापति के ऋतुवर्णन के समान कोई नवीनता नहीं है, परन्तु जिस प्राचीन पद्धति के अनुसार लिखा गया है, उस दृष्टि से इसकी रचना सराहनीय है।

( ५ ) कुशलविलास की रचना फफूँद ज़िला इटावानिवासी ठाकुर शुभकरणसिंह के पुत्र कुशलसिंह के नाम पर की गई थी। इसको अभी मुद्रित होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। इसे हिंदी-साहित्य का दुर्भाग्य कहना चाहिए कि देव ऐसे महाकवि की रचनाएँ अब तक प्रकाश में नहीं आईं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति प्रयाग के हिन्दुस्तानी एकेडेमी के पुस्तकालय में रक्खी है और डा० ताराचन्द्र की कृपा से यह हमें देखने को मिली थी। इसी ग्रंथ से हमने कुशलविलास

का संग्रह भी किया है। इसकी कविता अच्छी है। इसमें देव ने अपने आश्रयदाता की अधिक प्रशंसा नहीं की है। संभव है, कुशलसिंह ने प्रचुर दान-दक्षिणा से सम्मानित न किया हो।

(६) देवचरित का विषय पौराणिक है। यह जरासन्ध-वध के समान कंसवध के विषय पर लिखा गया है। कंसवध तक तो इसके वर्णन विस्तार-पूर्वक हैं परन्तु अन्य वर्णन संक्षिप्त हैं। सूरसागर की तरह इसमें भगवान् की जिस लीला में देव को अधिक आनन्द आया, उसका वर्णन उन्होंने विस्तार-पूर्वक किया और जिसमें यथेष्ट आनन्द नहीं आया उसको संक्षेप में टाल दिया। कवि ही तो ठहरे। किसी के बन्धन में थोड़े ही हैं कि हर एक विषय का नपा-तुला वर्णन करने के लिए विवश हों; और न कोई काव्य ही लिख रहे हैं, जिसके लिए उन्हें रीतिकारों का अनुशासन मानना पड़े। हितहरिवंश सम्प्रदाय के शिष्य होने के कारण देव को कृष्ण-लीला में विशेष आनन्द आना स्वाभाविक था; इसी लिए उन्होंने कृष्णपरक काव्य अधिक किया है। वास्तव में राधामाधव से बढ़कर शृंगाररस का आलम्बन विभाव बनने का और अधिकारी ही कौन हो सकता है। अतः देव के काव्य का सारा शृंगार ब्रजाधीश को ही समर्पित है। इसमें रासलीला और उद्धव-सन्देश का भी वर्णन है। यहाँ पर हम यह बात निःसंकोच भाव से कहना चाहते हैं कि न तो देव का रास वर्णन नन्ददास की रास-पंचाध्यायी से समता कर सकता

है और न इनका उद्धव-सन्देश सूरदास के भ्रमरगीत से अथवा रत्नाकर के उद्धवशतक से। देव के प्रेमी हमें इस धृष्टता के लिए क्षमा करें।

यहाँ पर कहा जा सकता है कि नन्ददास ने जिस आधार पर अपनी पञ्चाध्यायी बनाई है, वह बहुत दृढ़ है। यही हाल सूरदास के भ्रमरगीत का है। यदि देव की इस विषय पर की रचनाएँ उक्त कवियों की कृतियों से टक्कर न ले सकें तो कौन सा आश्चर्य का प्रसङ्ग है। इससे देव की कीर्ति-कौमुदी मलिन नहीं होती। हाँ, देव ने कालिय-मर्दन और गोवर्द्धन-धारण करने के प्रसङ्गों का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया है। इनके वर्णन में देव ने चित्र खींच दिया है। इस वर्णन में सूर के सिवा और कोई भी कवि देव के सामने प्रतियोगिता में नहीं ठहर सकता। यह ऐसा विषय था कि देव चाहते तो इस पर एक खण्डकाव्य लिख सकते थे, परन्तु न जाने क्यों उन्होंने खण्डकाव्य लिखने का प्रयास नहीं किया। कविसुलभ प्रतिभा का उनमें अभाव न था। विषय-वर्णन के लिए क्षेत्र भी पर्याप्त था। हाँ, मनोवृत्ति अवश्य न थी, इसका कारण देशकाल का प्रभाव था।

( ७ ) प्रेमचन्द्रिका की रचना डौंड़ियाखेरा के राजा राव मर्दनसिंह के द्वितीय पुत्र उद्योतसिंह के नाम पर की गई थी। इसका विषय नामकरण के अनुकूल ही है। इसमें शृंगाररस का

रसराजत्व प्रतिपादित किया गया है। देव ने जिस प्रेम का वर्णन किया है वह बीसवीं शताब्दी के अर्द्धशिक्षित रसिकों का प्रेम नहीं है, जिसका आविर्भाव पूर्वानुराग मात्र से होता है प्रत्युत इनके प्रेम में सीता और राम के उस आदर्श प्रेम की मात्रा अन्तर्हित रहती है, जिसका आश्रय लेकर आर्य-ललनाएँ अपने पतिदेव से परित्यक्त होकर भी आर्यपथ से विचलित नहीं होतीं। देव इन्द्रिय-जन्य सुख को तुच्छ समझते हैं और ऐसे प्रेम की भी निन्दा करते हैं। शृंगार रस की प्रधानता देते हुए भी देव उसे इन्द्रिय-जन्य लोलुपता से सदा बचाते रहे हैं। ग्रंथ के परार्ध में देव के विचारों में परिवर्तन सा परिलक्षित होता है। प्रेमसागर से निकलकर आप भक्ति की मन्दाकिनी में अवगाहन करते हैं। वही पुराना पेटेंट रामलीला का वर्णन होता है। फिर दो-चार भक्तों का उदाहरण दे करके ग्रंथ का अन्त किया गया है।

(८) जातिविलास की रचना अनुमानतः उस समय की गई होगी जब आजमशाह के निधन से दिल्ली-दरबार से देव का सम्बन्ध टूट गया था। इनके वर्णनों से तो ऐसा मालूम होता है कि इन्होंने भारतवर्ष के अधिकांश प्रदेशों की यात्रा की थी; क्योंकि इसमें विभिन्न जातियों की स्त्रियों का वर्णन है। देव ने अपनी इस यात्रा में जो कुछ अनुभव किया था, उसके परिणामस्वरूप इस ग्रंथ की रचना की है। इसमें काश्मीर की स्त्रियों से लगाकर

कहारिन तक का वर्णन है। इसके द्वारा अधमपात्रनिष्ठ रति की ओर संकेत होता है जो विश्वनाथ के मत से शृंगार रस न होकर रसाभास का सुन्दर उदाहरण है। यों तो वेनीप्रवीन ने भी अपने नवरसतरंग में जाति जाति की दूतियों का वर्णन किया है परन्तु देव का वर्णन परम उत्कृष्ट है। इसी वात पर मिश्रबन्धुओं ने इनकी सच्चरित्रता पर संदेह किया है। परन्तु यह संदेह यथार्थ नहीं प्रतीत होता। रसिया आदमी सर्वथा चरित्रहीन नहीं हुआ करते। सूरदास ने तो राधिका का ऐसा ऐसा वर्णन किया है, जैसा देव ने नहीं किया है; परन्तु सूर पर ऐसा आक्षेप कोई नहीं करता। वेचारे नर-काव्य करनेवालों पर सभी भौंहें मरोड़ते हैं।

(६) रागरत्नाकर संगीत-ग्रंथ है। जिस प्रकार तुलसी और सूर में संगीत और साहित्य दोनों ही कलाओं का सन्निवेश था वैसे ही देव में भी था। देव उच्च कोटि के कवि होने के साथ साथ संगीतज्ञ भी थे। भले ही वे तानसेन की तरह अच्छे गवैये न हों, क्योंकि गायन अभ्यास पर निर्भर है। परन्तु वे गायन के सिद्धान्त को अवश्य जानते थे। इसका प्रमाण है रागरत्नाकर, जिसमें उन्होंने रागों का सूक्ष्म विवेचन किया है। इसमें दो अध्याय हैं। पहला अध्याय दूसरे अध्याय की अपेक्षा वहुत वड़ा है। पहले अध्याय में राग और रागिनियों का वर्णन है और दूसरे में उपरागों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। रागों के विषय में जितनी ज्ञातव्य

बातें थीं, उनका वर्णन देव ने सूत्र-रूप से सुन्दर सवैयों में किया है। इन सवैयों में "सुरंग में प्योधिनी" शब्द अधिक आया है। यह सा, रे, गा, मा, पा, धा, नी, स्वरों का संकेत है।

(१०) रसविलास की रचना देव ने राजा भोगीलाल के लिए संवत् १७८३ में की थी। इसमें अष्टांगवती कामिनी का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है इससे पहले देव भावविलास की रचना कर चुके थे। परन्तु उसके बाद भी इन्होंने उसी विषय पर दूसरा ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता समझी। बात यह है कि रीति-काल के कवि अपनी सारी प्रतिभा नायिका-भेद लिखने में ही व्यय करते थे। उनके आश्रयदाता इसी विषय पर कविता सुनना चाहते थे। इसलिए कविगण अपने आश्रय-दाताओं का मनोरंजन करने के लिए उसी विषय पर लिखते भी थे। देव ने अपनी कविता का विषय वही लिया है परन्तु वे अपनी निजी पद्धति पर चले हैं। इसके वर्णन इतने उत्कृष्ट नहीं जितने प्रेमचन्द्रिका के। इसमें कई नायिकाओं के लक्षण-उदाहरण स्पष्ट नहीं होने पाये। काव्य की दृष्टि से रचना सुन्दर है। यह ग्रन्थ देव की प्रौढ़ावस्था का लिखा हुआ है क्योंकि इसकी रचना में भी प्रौढ़ता है।

(११) काव्यरसायन देव की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसे 'शब्दरसायन' भी कहते हैं। इसकी रचना में देव कवि होकर नहीं प्रत्युत आचार्य होकर हमारे सामने आते हैं। इस

समय देव के सम्मुख केशवदास का आदर्श उपस्थित होता है। इसमें आपने शब्दशक्ति पर विचार किया है, परन्तु आपकी विचार-शैली में विचित्रता है। संस्कृत-साहित्य में आचार्यों ने शब्द की तीन शक्तियाँ मानी हैं जिनके नाम हैं, अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। देव ने इनके साथ एक "तात्पर्य्य वृत्ति" का भी उल्लेख किया है। पाठकों की जिज्ञासा के लिए हम इस वृत्ति-विशेष की व्याख्या भी करते हैं। तात्पर्य्य वृत्ति का अर्थ है, वाक्य के भिन्न भिन्न पदों के वाच्यार्थ को एक में सम्मिलित कर देना। अतः प्रकारान्तर से यह अभिधा शक्ति ही हुई। परन्तु यह वाक्यगत है। साहित्य-वेत्ताओं के लिए यह कोई नई बात नहीं है। जिन लोगों ने न्यायशास्त्र का अध्ययन किया है, उन्हें तो यह बहुत दिनों से मालूम होगी। हाँ, जिन लोगों ने साहित्य-शास्त्र की वर्णमाला भी नहीं पढ़ी है, उनके लिए भले ही इसमें कोई नई बात हो। जहाँ अन्य आचार्यों ने नवरस की कविता बतलाई है, वहाँ देव ने छः रस मुख्य माने हैं, परन्तु रस-राज शृंगार को ही माना है। इसके अतिरिक्त इन्होंने रस के सम शत्रु और मित्र भावों की कल्पना की है।

चित्रकाव्य एक ऐसा विषय है, जिसमें परिश्रम अधिक होता है। इसी लिए आचार्यों ने चित्रकाव्य की निन्दा की है। देव ने इस ग्रन्थ में दशाङ्ग काव्य पर विचार किया है। इस समय देव सत्तर अलङ्कारों का अस्तित्व मानते थे, यद्यपि भाव-

विलास लिखते समय इन्होंने ३९ अलङ्कार माने थे। उपमा अलङ्कार का निरूपण तो देव ने बड़े विस्तार के साथ किया है, परन्तु अन्य अलङ्कारों का बहुत संक्षेप से। काव्य के लिए हिन्दी कवियों ने छन्द का उपयोग अनिवार्य समझा है। यदि निबन्ध छन्दोबद्ध न हो तो लोग उसका कवित्व ही स्वीकार न करेंगे। संस्कृत के आचार्यों ने काव्य का रूप स्थिर करते हुए काव्य की छन्दो-बद्धता को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया। उनका कथन है कि यदि निबन्ध में काव्योचित गुण उपलब्ध हैं तो वह काव्य है, चाहे गद्य हो या पद्य। इसी आधार पर इन्होंने कादम्बरी, हर्ष-चरित एवं दशकुमार-चरित तक को काव्य के अन्तर्गत माना है। देव ने अपने पिङ्गल में छन्दों का निरूपण बड़ी सुन्दरता से किया है और दण्डक नियत एवं अनियत गणवर्ण घनाक्षरियों को भी लिखा है। चित्रकाव्य के अन्य अङ्ग मेरु, मर्कटी, पताका, नष्टोद्दिष्ट आदि से भी देव परिचित थे। दुर्भाग्य-वश अब तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। हिन्दी की उन्नति के युग में ऐसे ग्रन्थरत्न का अप्रकाशित रहना बड़े दुर्भाग्य की बात है।

(१२) सुखसागरतरंग को देव ने पिहानी-निवासी अकबरअली खाँ के लिए बनाया था। इसमें भी नायिका-भेद है। मालूम होता है, अकबरअली खाँ शायद नायिका-भेदी रहे होंगे, तभी तो इन्होंने इसे पसन्द किया। इसमें

परिभाषा निर्माण करना कठिन है। अतः हम इस पर अधिक न लिखकर इतना ही विचार करके संतोष करेंगे कि कविता की कारणीभूत साधन शक्ति देव में कहाँ तक थी। शक्ति क्या है, शक्ति किसे कहते हैं—इसका उत्तर देते हुए आचार्य रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में कहा है—

मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधाभिधेयस्य।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्तिः॥

अर्थात् शक्ति उसे कहते हैं, जिसके द्वारा सुस्थिर अन्तःकरण में भाँति भाँति के वाक्यार्थों का स्फुरण हो और सरल पदों का ज्ञान हो। काव्य के लिए शक्ति का होना नितान्त आवश्यक है। परंतु साथ ही निपुणता, लौकिक वृत्ति के परिज्ञान एवं काव्यों के परिशीलन तथा काव्यांश की शिक्षा के द्वारा अभ्यास की भी आवश्यकता होती है। इन्हीं के द्वारा काव्य रचना एवं उसके रसास्वादन का अनुभव करने का सामर्थ्य होता है। इसके विना यदि काव्य-रचना असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है। काव्य-प्रकाशकार मम्मटाचार्य ने उसका हेतुनिरूपण करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

इसका समर्थन कुवलयानन्दकार ने भी किया है। वे प्रतिभा पर अधिक जोर देते हैं। प्रतिभा नव-नव उन्मेषशालिनी बुद्धि को कहते हैं। उनका कथन है—

प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कवितांप्रति ।
हेतुर्मृदम्बुसम्बद्धा बीजमालालतामिव ॥

अप्पयदीक्षित

दीक्षितजी के मत का समर्थन करते हुए श्रीयुत विष्णु कृष्ण शास्त्री चिपलूणकर कहते हैं कि काव्य के लिए विद्वत्ता और निपुणता इतनी आवश्यक नहीं है जितनी प्रतिभा। परन्तु आचार्य दंडी कहते हैं कि सारासार ग्रहण और त्याग में निपुणता अधिक काम देती है। शक्ति का कार्य वहीं समाप्त हो जाता है, जहाँ हृदय में शब्द और अर्थ का सन्निधान होता है। निष्कर्ष यह कि काव्य के लिए शक्ति, प्रतिभा और निपुणता तीनों की आवश्यकता है और इससे बढ़कर आवश्यकता है काव्य-शास्त्र के अभ्यास की।

तत्र शक्त्या शब्दार्थौ मनसि संनिधीयते ।
सारासारग्रहणनिरासौ व्युत्पत्त्या क्रियते ॥

काव्यादर्श

जब हम देव की प्रतिभा और शक्ति पर विचार करते हैं तो हमें यह स्पष्ट विदित होता है कि यह शक्ति इनमें पूर्णतया विद्यमान थी; क्योंकि यदि ऐसा न होता तो सोलह वर्ष की अवस्था में 'भाव-विलास' ऐसे उत्कृष्ट रीति-ग्रन्थ की रचना कैसे की जा सकती थी। लोक-व्यवहार-नैपुण्य भी इनमें उत्कृष्ट कोटि का था। ये वस्तु का सम्यक् निरीक्षण किया करते थे। आज़मशाह के दरबार से लौटकर इन्होंने एक लम्बी यात्रा

की थी। इस यात्रा में उन्हें भारत भर में भ्रमण करना पड़ा था। इससे उन्होंने प्रत्येक जाति, देश और श्रेणी की स्त्रियों का जैसा निरीक्षण किया था, उसके अनुभव-स्वरूप 'रस-विलास' नामक ग्रन्थ तैयार किया। देव के इस अबला-प्रकृति-निरीक्षण को लोग चाहे जिस दृष्टि से देखें, परन्तु उसमें कुछ तत्त्व भी है।

देव ने शृंगार-रसमयी कविता अधिक की है। यद्यपि कवि के नाते उन्हें नवों रस लिखना चाहिए था। बात यह है कि रीति-काल के बहुतेरे कवियों ने शृंगार रस के ही लिखने में अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया है। फिर देश-काल के प्रभाव से देव कैसे वंचित रह सकते थे? वह समय ही ऐसा था जब लोगों को आचार्य बनने की धुन थी, कवि बनने की नहीं। इसी लिए उस काल की रचना रीति-बद्ध है।

शृंगार-रस को कवियों ने रसराज माना है। देव भी इसके विशेष रूप से समर्थक हैं। शृंगार रस के स्थायी भाव में जैसी सुकुमारता, स्वाभाविकता एवं व्यापकता है, वैसी अन्य रसों के स्थायी भावों में नहीं। यदि विचार करके देखा जाय तो दाम्पत्य-प्रेम में प्रकृत पुरुष के पुनीत प्रेम का प्रतिबिंब परिलक्षित होता है। इसके आलम्बन-विभाव में समान आकर्षण है। इसके उद्दीपन-विभाव भी एक से एक सुन्दर हैं। प्रेम का वर्णन केवल हिंदी-साहित्य में ही नहीं है, प्रत्युत इसकी छाया विश्व-साहित्य में देखी जा सकती है। धार्मिक ग्रन्थों में भी इसका आभास मिलता है। बड़े बड़े कवियों ने इसी का वर्णन करके प्रतिष्ठा प्राप्त की

है और कविवर कालिदास कालिदास हो गये हैं। महापुरुषों ने दाम्पत्य प्रेम को मानव-समाज के विकास का एक उपयोगी साधन बतलाया है।

देव ने स्वकीया के प्रेम को श्रेष्ठ बतलाया है। कविता के आचार्यों ने जिन जिन गुणों की आवश्यकता बतलाई है, उन सबके उदाहरण देव की शृंगारिक रचनाओं से दिये जा सकते हैं।

कविता का काम लोकोत्तर आनन्द प्रदान करना है, केवल उपदेश देना ही नहीं। उपदेशकों को कवि मानना भी एक प्रकार की भूल है। हम व्यक्तिगत रूप से कबीर और नानक को कवि मानने के लिए तैयार नहीं; क्योंकि उनकी रचनाएँ कोरे उपदेश हैं। वे काव्य की उन कसौटियों पर नहीं कसी जा सकतीं, जिनका विधान अलङ्कारशास्त्रियों ने अपने रीतिग्रन्थों में किया है। आज-कल शृंगाररस के विरुद्ध जो सामाजिक संग्राम हो रहा है, उससे हम सहमत नहीं। परन्तु साथ ही हम कुरुचिपूर्ण साहित्य-निर्माण के भी विरोधी हैं। कवि को समाज के प्रत्येक अंग के चित्र चित्रित करने पड़ते हैं। जिस प्रकार वह वेश्या का चित्र चित्रण करता है, उसी प्रकार स्वकीया का। कवि भी नीति का उपदेश देता है, परन्तु उसके उपदेशों में कुछ और ही माधुर्य रहता है। सारी कविताएँ उपदेशपूर्ण ही नहीं हुआ करतीं। उपदेशरहित कविता भी कविता हो सकती है, यदि उसमें काव्योचित गुणों का समावेश

हो। कविता के लिए जितनी आवश्यकता रस-परिपाक की है, उतनी उपदेशों की नहीं। हमारे विचार से उपयुक्त आदर्शवादिता के फेर में पड़कर ललित कला का संहार करना कदापि उचित नहीं।

कविता का प्रधान गुण भाव है और गौण शब्द-सौन्दर्य है। शब्द-माधुर्य इसी परिधि के अंतर्गत आ जाता है, इसलिए हमें कविता की मीमांसा करते समय इस बात पर दृष्टि रखनी चाहिए कि इसमें भावों का सामंजस्य कहाँ तक है। शब्द-माधुर्य व्रजभाषा का एक अंगीभूत गुण है। व्रजभाषा में कविता करने का जिन्हें अभ्यास है, उन्हें माधुर्य गुण लाने के लिए बहुत भटकना नहीं पड़ता। वह आप ही आप उनकी रचना में आ जाता है। जब हम देव की कविता पर विचार करते हैं, तब हमें विदित होता है कि इसमें माधुर्य गुण का आधिक्य है। कारण यह है कि सबकी सब विशुद्ध, परिमार्जित और परिष्कृत व्रजभाषा में है। इसके अधिकांश छन्दों में कोमल कान्त पदावली उपलब्ध है। कहना न होगा कि माधुर्य का कविता के साथ अंग-अंगी सम्बन्ध है। जो लोग सोचते हैं कि माधुर्य से कविता का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, हमारी राय में वे भूल करते हैं।

जहाँ देवजी काव्यशास्त्र के पारगामी पंडित थे, वहाँ वे संगीतशास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे। यदि ऐसा न होता तो राग-

रत्नाकर ऐसे सुन्दर ग्रन्थ की रचना करने में वे कभी समर्थ न होते। इसमें रागों और रागिनियों का शास्त्रीय विवेचन है। देव संगीतशास्त्र की पद्धति से परिचित थे। यह बात और है कि वे तानसेन के समान गवैये न हों। सम्भव है कि संगीत की ओर उनकी अभिरुचि स्वभाव ही से हो या सम्पन्न पुरुषों की संगति में रहने से इसका प्रादुर्भाव हुआ हो। देव राजदरबारों में रह चुके थे। उस समय के राजा संगीत और साहित्य दोनों का समान आदर करते थे। दरबारी के लिए तत्कालीन प्रथा के अनुसार संगीत जानना कुछ आवश्यक सा था।

देव ने अपनी कविता में प्रेम का वर्णन खूब किया है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे केशव के समान रसिक पुरुष थे। उनमें स्वाभिमान और गुणग्राहिता की भी मात्रा अधिक थी। देव को सौभाग्यवश हिन्दू और मुसलमान दोनों राजाओं का आश्रय प्राप्त हुआ था। परन्तु मुसलमान आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए इन्होंने कभी भाषा का रूप नहीं बिगाड़ा।

देव का साहित्यिक परिज्ञान भी बहुत बढ़ा-चढ़ा था। आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का इन्होंने अपनी कविताओं में बड़ा ही सुन्दर सन्निवेश किया है। दर्शन-शास्त्र में भी इनकी अबाधित गति थी। देवचरित्र के अनुशीलन से विदित होता है कि वे इतिहासज्ञ भी थे। न्याय और नीति से भी आप अवगत थे और वेदान्त भी अवश्य

रहे होंगे; क्योंकि विना इसके नीति और वैराग्यशतक ऐसे ग्रन्थों का निर्माण करना कठिन था।

देवजी में पर्याप्त मौलिकता भी थी। यद्यपि उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह एक बँधी हुई पद्धति के अनुसार नायिका भेद पर लिखा है, परन्तु उसमें भी विलक्षणता है। नायिकाओं का वर्गीकरण देव ने अपने निजी ढंग पर किया है। उन्होंने छन्दःशास्त्र और चित्र काव्य पर भी लिखा है। कवि-कर्तव्यवश वे ऐसा करने के लिए विवश थे, अन्यथा वे चित्रकाव्य के समर्थक न थे। परकीया के प्रेम को भी वे प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखते थे, पर उसका वर्णन उन्होंने बड़े ही अच्छे ढंग पर किया है।

देव की कविता में स्वाभाविकता अधिक है। हमारी राय से स्वाभाविकता अतिशयोक्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है यद्यपि साहित्यानुरागी अतिशयोक्ति को अधिक गौरव देते हैं। यह तो अपनी अपनी अभिरुचि पर निर्भर है।

देवजी सर्वपाश्रीन प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। आपने अपने समय की सभी प्रमुख शैलियों में कविता की है। नीति और वैराग्य सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे हैं और यहाँ तक कि एक नाटक भी लिखा है, यद्यपि यह नाटक किसी भी नाटकीय कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। पिंगल के भी आप पूर्ण रूप से ज्ञाता प्रतीत होते हैं। आपने ३० से लेकर ३८ वर्ण तक की घनाक्षरी लिखी हैं और कई अन्य छन्दों में भी इसी प्रकार अपना

व्यक्तित्व दिखलाया है। आपकी उक्तियाँ बड़ी सरस हैं और उपमाएँ भी अपूर्व हैं। नायिकाभेद के तो आप आचार्य ही थे; क्योंकि शृंगार ही को आपने रसराज माना है। साथ ही साथ आपके नख-शिख और ऋतु वर्णन भी अपूर्व हैं। आपकी भाषा बड़ी प्रौढ़ है। पदचयन आपका नितान्त कोमल और मधुर है। गलित वर्ण और कर्ण-कटुता तो उनसे कोसों दूर है। शब्दकोश भी आपका बहुत विशद है। इसलिए आपने जैसा भी अन्त्यानुप्रास लिया, उसका सुन्दर निर्वाह करके दिखलाया। वाक्य-विन्यास नितान्त सुन्दर है। भाषा और भावों का मनोहर सामञ्जस्य है। रूपक तो आपका नितान्त मनोरम है। हाँ, कहीं-कहीं शब्द अवश्य तोड़े गये हैं। इसका कारण अनुप्रास की दुरूहता है।

देव को सानुप्रास रचना बहुत पसन्द थी। इसी लिए उन्हें कभी-कभी शब्दों का अङ्ग-भङ्ग भी करना पड़ता था। इसका परिणाम यह है कि उनकी भाषा में स्निग्ध प्रवाह न आ सका। कहीं-कहीं भाषा भावों का साथ भी नहीं दे सकी है। शब्द-मैत्री जोड़ने की रुचि से आकर देव कहीं-कहीं अशक्त पदों का प्रयोग भी कर गये हैं। इससे कहीं कहीं वाक्य भी अविन्यस्त हो गये हैं; परन्तु इसके साथ ही साथ जहाँ पर भाषा ने भावों का साथ दिया है, वहाँ पर इनकी रचना बड़ी सुन्दर हुई है। इसी लिए आलोचकों ने देव को रीतिकाल का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है। श्री मिश्र-बन्धुओं की सम्मति सर्वदा माननीय

है कि जिस साहित्य-क्षेत्र में सूर, तुलसी सूर्य्य और चन्द्रमा के समान माने गये हैं, उसी में देवजी व्योममंडल के समान हैं। जहाँ तक साहित्यशास्त्र का संबंध है और पार्थिव उक्तियां और कल्पना की उड़ान का प्रश्न है, देव बहुत ऊँचे उठे हुए कवि हैं।

## भावसाम्य

साहित्य के समालोचकों ने मौलिक रचनाओं की प्रशंसा की है, परन्तु इस मौलिकता का निर्वाह काव्यक्षेत्र में कहाँ तक किया जा सकता है, यह बात विचारणीय है। हमारा तो अनुमान है कि सर्वप्रथम रचना भले ही मौलिक कही जा सके; परन्तु उसके बाद की रचना में किसी न किसी रूप में उसकी छाया अवश्य देखने में आवेगी। इससे कोई महानुभाव यह कल्पना न कर बैठें कि हमें आजकल की किसी रचना में मौलिकता ही नहीं दृष्टिगोचर होती। मौलिकता की भी एक अलग माप है।

परवर्ती कवि अपने पूर्ववर्ती सहयोगी की रचनाओं से अवश्य प्रभावान्वित होता है और उसके अध्ययन का फल यह होता है कि उसकी कविता के भाव उसके हृदय-पटल पर अङ्कित हो जाते हैं। उनका संस्कार इतना दृढ़ जम जाता है कि जब वह लिखने बैठता है, तब उसके हृदय में वही भाव उठने लगते हैं और कभी-कभी वह उन्हीं के अनुसार अपनी रचना

भी कर डालता है। ऐसी रचना की गणना भावसाम्य की परिधि के अन्तर्गत की जाती है।

भाव-ग्रहण करना कोई चोरी का काम नहीं है। यदि यह भी चोरी मानी जाय तो तुलसी, सूर, केशव, कालिदास और श्रीहर्ष तक इस अभियोग से मुक्त नहीं हो सकते। हमने अपने तुलसी-तरङ्ग, सूर-संग्रह और केशव-कल्पद्रुम में इसके अनेक उदाहरण दे रक्खे हैं। जिन महानुभावों को भाव-ग्रहण की छटा देखनी हो वे हमारी उपर्युक्त रचनाओं में देखने की कृपा करें। तब तो उन्हें इस बात का विश्वास हो जायगा कि जिस प्रकार चित्त की चोरी कोई चोरी नहीं मानी जाती, वैसे ही भाव-ग्रहण भी कोई चोरी नहीं है। चित्त की चोरी और कविता की चोरी सदा से होती आई है और सम्भवतः होती भी रहेगी। यदि पहले ऐसा न होता तो श्रीयुत अभिनवगुप्ताचार्य को अपने "ध्वन्यालोक" में इसके समर्थन में यथोल्लिखित व्यवस्था न देनी पड़ती—

> यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्
>
> स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते।
>
> अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्
>
> सुकविरुपनिबध्नन्निन्द्यतां नोपयाति।

इसी प्रकार अँगरेज़ी साहित्य के आलोचकों ने भी कहा है। उनका निष्कर्ष यह है कि भाव किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति

नहीं हैं। जो कवि उनको सुन्दरता-पूर्वक व्यक्त कर सकेगा, उसी के वे कहलाएँगे। भावों का ग्रहण करना बुरा नहीं है। हाँ, उनको लेकर बिगाड़ना अवश्य अपराध है। जहाँ तक उसकी रक्षा हो सके वहाँ तक अच्छा है और यदि कवि अपनी प्रतिभा के बल पर उसे और भी माँज दें तो क्या कहना है! बात तो तभी है कि जिस भाव को ग्रहण किया जाय उसको ऐसी सुन्दरता से व्यक्त किया जाय कि उस पर अपनी मुद्रा अङ्कित हो जाय और वह चमकने लगे। यदि कवि प्रतिभा-सम्पन्न है तो हमारा विश्वास है कि वह जिस भाव को ग्रहण करेगा उसमें नूतनता लाकर उपस्थित करेगा, जिससे समझनेवालों को इस बात के कहने का साहस किसी तरह न हो सकेगा कि यह भाव अन्य कवि का है। उदाहरण के लिए हम यहाँ पर कविवर दास का एक छन्द भाव-ग्रहण के विषय पर उपस्थित करेंगे। पाठक देखें कि यह अपने मौलिक आधार से उत्कृष्ट है या नहीं।

कवियों और तुक्कड़ों में बहुत दिनों से संघर्ष चला आता है और कदाचित् यह सदा रहेगा भी। कवि संसार को शान्ति और क्षमा का उपदेश दे सकता है, परन्तु वह तुक्कड़ की धृष्टता को कभी सहन नहीं कर सकता। सामान्य कवियों की तो कोई बात ही नहीं है, गोस्वामी तुलसीदास ऐसे वीतराग महाकवि भी तुक्कड़ों की धृष्टता से रुष्ट होकर अन्त में कहते ही हैं —

खल उपहास होय हित मोरा।
काग कहहिं कल कंठ कठोरा॥

इसी बात को कविवर दास और ही प्रकार से कहते हैं। उन्होंने अपने छन्द का भाव कविवर राम से लिया है; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि दास की रचना उससे कहीं उत्कृष्ट है। देखिए—

हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता,
जनः स्पर्धालुश्चेदहह कविना वश्यवचसा।
भवेदद्यः श्वो वा किमिह बहुना पापिनि कलौ,
घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः॥

राम कवि

जुगनू भानु प्रभान के सामुहे, आपनी जोतिन को जस गैहैं।
गीदड़ जाय मृगाधिप सों, हरिबे की बड़ी बड़ी बात बनैहैं॥
दास भुपै तुक जोरनहार, कविन्द उदारन की सरि पैहैं।
तौं करतार सों और कुम्हार सों, एक बिना झगरो बढ़ि जैहैं॥

दास

१—रीतिकाल के कवियों ने अपनी सारी प्रतिभा नायिका-भेद के लिखने में लगा दी है। इन कवियों को अन्तः-प्रकृति-निरीक्षण का न जाने कितना अनुभव था। क्यों कि हृदय का कोई ऐसा विकार नहीं है, जिसकी इन्होंने मीमांसा न की हो। यहाँ तक कहें, स्त्रियों के सम्बन्ध की कोई ऐसी

बात नहीं है जिस पर इन्होंने प्रकाश न डाला हो। शृंगार रस के अन्तर्गत नायिका-भेद का विषय वास्तव में रीतिकाल के कवियों के अबला-प्रकृति-निरीक्षण का ज्वलन्त उदाहरण है।

एक स्त्री अपने घर में बैठी थी। नाइन उसको स्नान कराने के लिए आई। उसके अङ्ग की स्वाभाविक सौन्दर्यजनित लालिमा ईंगुर के रङ्ग को भी मात करनेवाली थी। उसको देखकर नाइन को आश्चर्य होने लगा और वह चुपचाप उसकी एड़ी से चोटी तक के सौन्दर्य को देखती रही। नाइन की यह चेष्टा देखकर उस स्त्री को भी हँसी आ गई। इस भाव को कविवर देव ने कैसी सुन्दरता से अङ्कित किया है।

आई हुती अन्हवावन नायन, सौंधे किये पग सूधे सुभायनि।
कंचुकी खोलि धरी उबटैबे को, ईंगुर के रंग सी सब ठायनि॥
'देवजू' रूप की रासि निहारत, पायँ ते सीस लौं सीस ते पायनि।
ह्वै रही ठौरहि ठाढ़ी ठगी सी, हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुरायनि॥

कविवर विहारीलालजी इस भाव पर इससे पहले लिख चुके थे। उनके दोहे की जैसी प्रशंसा संजीवनभाष्यकार श्रीयुत पं० पद्मसिंह शर्मा ने की है वह यथार्थ है। विहारी के दोहे देखिए—

कोहर सी एड़ीन की, लाली देखि सुभाय।
लाई जावक देन कों, आपु भई बेपाय॥१॥
पायन जावक देन कों, नायन बैठी आय।
पुनि पुनि जानि महावरी, एड़िहिं मींड़त जाय॥२॥

नायिका की एड़ियों की स्वाभाविक लालिमा के विषय में इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। और कवियों ने भी इसी भाव पर लिखा है; परन्तु वे बिहारी को नहीं पाते। वास्तव में बिहारी का और ही वैदग्ध्य है।

कुछ नमूने और भी देखिए—

नायन पायन जावक देन कौं, प्रान प्रिया ढिग आई उतावरी।
लाड़िली के ढिग बैठि रहे, मुख सों पद-कंज गहे सुधि भाव री॥
लै नवला पग को कर पै, अरु सो 'रसिकेस' न भेद लखावरी।
लाली बिलोकि थकी थिर ह्वै, तिय एड़िन्है मीड़ति जानि बावरी॥

—रसिकेश

रही पूजिबे को पवनी घर मैं, नव नागरि पै चहूँ आय गई।
पग धोय गुलाब के आवनि सौं, दोऊ एड़िन ही को सुहाय रही।
कर कंज पै जावक धारि कै नारि, लगाइबे को मन लाय रही।
ठकुराइनि के लखि पायनि यौं, मनि नायनिका सो ठगाय रही।

—सेवक

मंद ही धरे ते इन्द्रवधू से बरन होत,
प्यारी के चरन नवनीत हू ते नरमैं।
सहज सुभाइ तिन्हैं निरखि 'ग्वालराम',
जौबन की पगा पगि परै धौं कहि सकैं॥
एड़ी ठकुराइनि की नाइनि गहत जब,
बोरन सौं रंग चौंकि लाल इकटक मैं।

दीनी है कि दीवे है विचारै सोचै बार-बार,
बावरी सी ह्वै रही महावरी लै कर मैं ॥
—काशीराम

नायिका के सौकुमार्य का ऐसा सुन्दर वर्णन देखकर भला कविवर दास से कैसे रहा जाता ? ऐसे ललित भाव को ग्रहण करने का लोभ संवरण कर सकना भी एक बड़ी बात है। दास का भी एक छन्द देखिए—

आरज आवन दासी कह्यो, उठि बाहर तें गई भीतरें प्यारी।
त्यों महि पै पग धारत ही, दोऊ ऍंड़िन छाय रही अरुनारी॥
जावक दीन्ह्यो कि दीन्ह्यो नहीं, सो विलोकि विलोकि कै नाइनि हारी।
प्यारी कही अरी दाहिनै दै, मोहि जानि परै पग बाम है भारी॥

इस सौकुमार्य का भी कोई ठिकाना है। पृथ्वी पर पैर धरते ही ऍंड़ी इतनी लाल हो जाती है कि बेचारी नाइन को बार बार देखने पर भी इस बात का पता नहीं लगता कि इसमें जावक दिया है अथवा नहीं। उसको इस प्रकार किं-कर्तव्यविमूढ़ देखकर ठकुराइन बतलाती है कि देख दाहिने पैर में जावक दे, इसमें नहीं लगा है। इसका कारण यह है कि यह बायें पैर की अपेक्षा कुछ हल्का है। और वह जावक लगने के कारण भारी है। धन्य है दासजी की विदग्धता और पैनी दृष्टि ।

ये सब छन्द प्रायः एक ही भाव पर लिखे गये हैं, परन्तु इन सब की विशेषता और सौंदर्य अलग-अलग हैं। संचारी भावों

की भिन्नता के कारण इन सबमें अपना निजी सौन्दर्य आ गया है। देवजी का छन्द तो अपूर्व है ही और बिहारी के विषय में जो कुछ कहना था उसे पंडित पद्मसिंहजी कह ही चुके। हाँ, यहाँ दासजी के विषय में इतना ही कह देना है कि यह छन्द भी अपने ढंग का निराला है और इसमें अन्य कवियों की रचनाओं की अपेक्षा साहित्य-सौंदर्य की किसी प्रकार न्यूनता नहीं होने पाई है।

२—नायिका के गात्रों में स्वाभाविक सौन्दर्य का स्थायी निवास होता है। मधुर आकृतियों को मंडन ( शोभा-सामग्री ) से कोई विशेष लाभ नहीं, तथापि इन मंडनों के रंगों में उसकी गात्रप्रभा के कारण परिवर्तन उपस्थित होते ही रहते हैं। तद्गुण अलंकार का आश्रय लेकर कवियों ने इस विषय पर बहुत कुछ कहा है। कविवर देव का वर्णन देखिए—

सीसे को सिहासन, नगीने नैन, अधर,
छबीले पन्ना स्यामाहन आभा अटरन को।
नीलमनि भाग हैं पद्मराग हैं,
पुखराज हैं लाल दियो है निकट पन को।
'देव' दिपैमक दुति कंचन कुराग जोति,
विमल कुन्द हीरालाल गहपन को।
विरचि रचैरचि फिर, घने घर घने कोटि,
होने दद्दन नट मोती म्हारन को॥

इसी भाव पर दास की कारीगरी देखिए—

पन्ना-संग पन्ना ह्वै प्रकासित छनक लै,
कनक-रंग पुनि ये कुरगनि पलतु है।
अधर ललाई लावै लाल की ललकि पाय,
अलक फलक मरकत सो रलतु है।
ऊदौ-अरूनो है, पीत-पट लहरौहै ह्वै कै,
दुति लै दोऊ को 'दास' नैननि छलतु है।
समरथु नीके बहुरूपिया लौं तहाँ ही मैं,
मोती नथुनी को बर बानो बदलतु है॥

अब इसी सम्बन्ध में बिहारी की बहुज्ञता देखिए—

अधर धरत हरि के परत, ओंठ-दीठि-पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुप-दुति होति॥

बिहारी ने क्या ही सुन्दर इन्द्रधनुष देखा है। पावस-कालीन आकाश का इन्द्रधनुष इसकी क्या समता कर सकता है। यह धनुष तो भगवान् कृष्ण की मंजुल मुरलिका और ओठों के संयोग से बना है।

अब सेवक की सौम्यता देखिए—

देखे सुगन्धित बेले के देत, भये कर लेत जपादल वैसे।
त्यों महि डारे परे पग पीठ, धरे रंग सोनजुही महँ जैसे॥
'सेवक' हाँसी लगी उलझारि, निहारि लखे पै लगे सबै तैसे।
टोने किये किधौं लोने अबै पै, दिये नये मालिन फूल धौं कैसे॥

यह मुग्धा का वर्णन है। कोई मुग्धा एक दिन अपनी वाटिका में टहलने के लिए गई। मालिन ने उसे श्वेत पुष्प लाकर दिये। वे फूल बेले के थे; क्योंकि उनमें बेले की सुगन्ध आ रही थी। परन्तु ज्योंही वे मुग्धा के करसम्पुट में रक्खे गये, त्योंही हथेली की अरुणता के कारण जपापुष्प के समान दिखलाई पड़ने लगे। अंजलि में पुष्प डालते समय कुछ तो उसके पैर और पृथ्वी पर पड़े थे, वे उसमें स्वर्णजुही के फूलों के समान दिखलाई पड़ने लगे। एक ही प्रकार के फूलों को कई प्रकार के रंगों में देखकर मुग्धा को कौतूहल होना स्वाभाविक था। उसने तत्काल अपनी अंजलि के फूलों को, वास्तविक रहस्य जानने के लिए, उलझाया तो फिर वे ज्यों के त्यों दिखलाई पड़ने लगे। परन्तु सम्पुट में आते ही आते फिर लाल हो गये। विलक्षण व्यापार था। मुग्धा को सन्देह हो गया कि अवश्य इन फूलों में कोई जादू किया गया है। कैसा ललित भाव है। पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है।

बाग में ठाढ़ी सुहाग भरी, अनुराग सों पान करैं चहुँ फेरे ।
मालिनि माल दई जुहि ल्याय, धरी हाथ सों तब मैं गहि हेरे ॥
'सेवक' दीठि फिराय दिखाय, धरी पुनि त्यों ही तथा गहि हेरे ।
दोनों जुही को तुमें कहि है, कहि सोनजुही की कहि तब हेरे ॥

—सेवक

पालि ही नूँ कि सदा को सों में, गज-मोतिन की पहिरें लखि ज्ञान ।
लाई यहाँ ते इसी पुनराग को, मन सई मधुरा सह जान ॥

न्हात उतारी हौं 'बेनी प्रवीन', हँसैं सुनि बैनन नैन रसाला।
जानति ना अंग की बदली, सब सों बदली-बदली कहै माला॥

—बेनी प्रवीन

कवियों को त्रिवेणी की कल्पना बहुत प्रिय है। जहाँ कहीं उनको सितासित वर्णों का सम्पर्क मिला और साथ ही साथ कहीं लालिमा का भी आभास हुआ तो फिर उन्हें वहाँ तत्काल त्रिवेणी ही दिखलाई पड़ती है। कविवर पद्माकर ने किसी बाला को सरोवर में स्नान करते देखा। कवि की दृष्टि बड़ी पैनी होती है। उसके बालों के निकट का पानी श्यामता लिये हुए था, हीरों के हार के निकट का पानी स्वच्छ था और पैरों में जावक के धुल जाने से कुछ अरुणिमा भी उसमें आ गई थी। बस, इतनी ही सामग्री त्रिवेणी बनाने के लिए पर्य्याप्त थी। देखिए—

जाहिरै जागति सी जमुना, जब बूड़ै बहै उमहै वह बैनी।
त्यों 'पदुमाकर' हीर के हारनि, गंग-तरंगनि सी सुख दैनी।
पायनि के रँग सौं रँगि जात, सो भाँति ही भाँति सरस्वती सैनी।
पैरे जहाँई जहाँ वह बाल, तहाँ तहाँ ताल मैं होत त्रिवैनी॥

कविवर लछिरामजी ने ऐसी त्रिवेणी मिथिला में देखी थी। लछिरामजी के वर्णन में अपूर्व सौन्दर्य है। देखिए—

लालिमा श्री तरवानि के तेज तैं, सारदा लौं सुषमा की निसैनी।
नूपुर नील मनीन जड़े जमुना बहैं जौंहर सी सुखदैनी।

त्यों 'लछिराम' छटा नख नील तरंगिनि गंग-प्रभा फल पैनी।
मैथिली के पद पंकज ब्याज, लसै मिथिला मग मंजु त्रिबैनी।

यह ऐसा ललित भाव है कि इन पर प्रायः सभी लिखने की इच्छा रखते हैं।

साहित्यदर्पण के यशस्वी टीकाकार स्वर्गीय पण्डित शालग्रामजी साहित्याचार्य ने इसी विषय पर एक श्लोक लिखकर अपने ग्रन्थ का मङ्गलाचरण किया है।—

आशोणाकोणदेशाद्विकसितकुमुदामोदिनी पार्श्वभागात्,
नीलेन्द्रकान्तिकान्ता कलितकलुषहरा संसरन्ती च मध्यात्।
व्योमस्थेव त्रिवेणी त्रिदशवशकरी देवतेव त्रिरूपा,
त्रीन् संस्कारान् धमन्ती जयतु नयनयोः कापि कान्तिर्भवान्याः॥

२—अबला को चाहे जितना कष्ट हो जाय, सो तो उसे सह्य होता है, परन्तु अपने पति का अन्यासक्त होना कदापि सह्य नहीं होता। कदाचित् इसी मनोवृत्ति के कारण सपत्नियों में पारस्परिक विद्वेष बना रहता है; परन्तु देवजी की कल्पना में एक अपूर्वता है। जहाँ अन्य खण्डिताएँ अन्यपत्नी की रति के सन्देह मात्र पर अपने पतियों से कटु वचन तक कहने लगती हैं, वहाँ देव की खण्डिता कितनी संयत भाषा में अपने उद्गार प्रकट करती है, यह देखने ही बनता है। उसको इसी में सन्तोष है कि पति का कल्याण हो, चाहे वह उसे दर्शन दे या न दे। नारी जाति की कितनी विवशता इससे प्रकट होती है?

माथे महावर पाँय को देखि, महावर पाप सुढार ढुरीपै।
ओठंन पैठ नवै अँखियाँ पिय के हिय पैठन पीक धुरीपै।
संग ही संग बसौ उनके, अँग अंगनि 'देव' तिहारे लुरीपै।
साथ मैं राखिए नाथ! उन्हें, हम हाथ में चाहती चारि चुरीपै।

—देव।

इसी भाव पर निम्नलिखित छन्द भी कहा गया है।

भावै जितै उत ही रहौ नाथ! पुजावौं सबै अभिलापनि ही के।
रंचक नेह सों मोहि निहारि, रहौ चहै संग वहै युवती के।
केवल चाहियै मोहि सुहाग, लला सुनो साँचे मनोरथ जी के।
मेरे रहौ चहै वाके रहौ, पै जितै रहौ लाल रहौ तुम नीके।

—अज्ञात कवि

मतिराम का भी एक छन्द इसी भाव पर है। उन्होंने इस भाव को कैसे व्यंग के साथ व्यक्त किया है। सापराध पति के लिए कितना सुन्दर व्यङ्ग है।

कोउ नहीं बरजै मतिराम, रहौ उत ही जित ही मन भायो।
नाहक सौंहैं हजार करौ, तुम तो कतहूँ अपराध न ठायो॥
सोवन दीजै न दीजै हमैं दुःख, काहे वृथा रस वाद बढ़ायो।
मान ही नाहीं रह्यो मनमोहन, मानती होय सो मानै मनायो॥

यद्यपि यह वर्णन खण्डिता का न होकर मानवती का है, तथापि बड़ा ही सुन्दर है। इसमें मतिराम्जी की मुद्रा स्पष्ट रूप से अङ्कित है।

४—स्त्रियों में उत्सुकता और जिज्ञासा की मात्रा बहुत अधिक हुआ करती है। किसी अपूर्व बात की भनक इनके कान में पड़ जाय, तो ये जब तक उसका पूरा रहस्य न जान लेंगी तब तक इन्हें चैन न आयेगी। क्या करें बेचारी अपने स्वभाव से विवश हैं। लाख अपने चित्त की वृत्ति को दबावें पर वह दबाये नहीं दबती। सड़क पर यदि कोई ढोल बजाकर कुछ गाते हुए निकले और उसका शब्द स्त्रियों के कानों में पड़ जाय तो वे अपना आवश्यक कार्य छोड़कर उसे देखने अवश्य आवेंगी और जब तक वे उसके विषय में कुछ जान न लेंगी, तब तक उनका कौतूहल शान्त न होगा।

भगवान् कृष्ण ने वंशी बजाई। उस वंशीरव में ऐसा आकर्षण था कि ध्यानावस्थित मुनियों तक की समाधि टूट जाया करती थी। फिर गृह में रहनेवाली गोपियों का क्या हाल हो सकता है, यह पाठकों के लिए अनुमान करने की बात है। देव ने इसका चित्रण निम्नलिखित छन्द में किस सुन्दरता के साथ किया है—

घोर गरुनीजन बिपिन तरुनी जन तें,
निकसी निसंक निसि आतुर अतंक में।
गनैं न कलंक मृदु लंकनि मयंकमुखी,
पंकज-पगन धाईं भागी निसि-पंक में॥
भूषननि भूलि पैन्हें उलटे दुकूल 'देव',
खुले भुजमूल प्रतिकूल बिधि बंक में।

सिगरी भगानी पहिचानी प्यारी मुसकानी,
छूटिगो सकुच सुख लूटि सरसानी है॥

७—विप्रलम्भ शृंगारान्तर्गत विरह-वर्णन साहित्य का एक मुख्य अङ्ग है। जिस कवि में जितनी प्रतिभा होती है वह उतने ही ठाठ से उसका वर्णन करता है। हिन्दी-साहित्य में वियोग-वर्णन की प्रकारान्तर से परिपाटी सी है। इस वर्णन में प्रायः नायिकाओं का ही विरह-वर्णन किया जाता है, नायक का कम किया जाता है। विरह-वर्णन के इस विषम विभाजन का कोई स्पष्ट कारण परिलक्षित नहीं होता। संस्कृत साहित्य में जहाँ नायिकाओं का विरह-वर्णन है, वहाँ नायकों का भी है। आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् रामचन्द्र का विरह-वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। महाकवि कालिदास ने भी मेघदूत में विरही यक्ष का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है और उसकी कृशता का निरूपण करते हुए कहा है—

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी,
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्,
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श॥

विरही यक्ष की कृशता की व्यञ्जना इससे सुन्दर और क्या हो सकती है? बिहारी के वर्णन के समान इसमें

कोरी अत्युक्ति नहीं है। इसी भाव पर एक छंद कविवर देवजी का भी है—

लाल बिना बिरहाकुल बाल बियोग की ज्वाल भई झुकि झूरी।
पौन औ पानी सों प्रेम कहानी सों पान ज्यों प्राननि राखत दूरी॥
'देवजू' आजु मिलाप की औधि सो बीतत देखि बिसेख बिसूरी।
हाथ उठायो उड़ायबे कौ उड़ि काग गरे गिरी चारिक चूरी॥

देव की नायिका कितनी कृश हो गई है। हाथ उठाने ही चूड़ियाँ गिर पड़ती हैं। विरह ऐसा ही होता है।

८—संस्कृत-साहित्य के कवि पुरुष-विरह का भी वर्णन करते हैं, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं। एक कवि भगवान् रामचन्द्रजी के विरह का चित्र इस तरह खींच रहे हैं। इसमें अर्थान्तर-संक्रमित वाच्यध्वनि की कैसी सुन्दर छटा है। और रस के साथ गुण और वृत्ति का कैसा सुन्दर सामञ्जस्य है। वर्णन के अनुकूल मंदाक्रान्ता वृत्त भी चुना गया है।

क्षान्तं कार्श्यादभिगतमपां बिन्दवो बाष्पपातात्,
तेजः पाण्डुत्वमनुभयवशाह्लादकः श्वासदैर्घ्यात्।
इत्थं नष्टं विरहविधुरस्याङ्गमाकाशशून्यम्,
जीवत्येवं पुलिनशरणो रामचन्द्रः किमेतत्॥

—उद्भट

सांसन ही सों समीर गयो अरु आंसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तन की तनुता करि॥

'देव' जियै मिलिबेई की आस कि आसहू पास प्रकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि॥

—देव

भगवान् रामचन्द्र की सीता के विरह में कैसी दयनीय दशा हो रही है। शरीर के पाँचों तत्त्व जहाँ से आये थे वहीं धीरे-धीरे जा रहे हैं। केवल सीता के पुनर्मिलन की आशा मात्र से भगवान् प्राण धारण करने में समर्थ हो रहे हैं। आशातन्तु सूक्ष्म होते हुए भी वास्तव में बड़ा प्रबल होता है। इसी का आश्रय लेते हुए विरही विषमबाण की वेदना को सहते हुए भी जीवित रहते हैं। यह आशातन्तु भी कविवर्णन का एक सुन्दर विषय है। पहले कालिदास को देखिए—

ताञ्चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीम्,
अव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशापाशः कुसुमसदृशः प्रायशो ह्यंगनानाम्,
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि॥

—मेघदूत

तेरी भाभी दिन गिन रही एकभर्तावती को,
देखेगा तू रुक न पथ में जा वहीं जीवती को।
होता स्नेही हृदय जिनका पुष्प सा शीघ्रपाती,
आशा प्रायः प्रियविरह में स्त्री जनों को जिवाती।

इसी भाव पर कविवर भवभूतिजी का छन्द देखिए। आशातन्तु पर आपकी उक्ति कैसी मार्मिक है।

दैवात् पश्येः जगति विचरन् सखिया मालती चेत्,
आश्वास्यादौ तदनु कथय माधवीयामवस्थाम्।
आशातन्तुर्न च कथयता नाप्यनुच्छेदनीयः
प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः॥

—मालतीमाधव

इसी भाव पर कविवर सोमनाथ का एक छन्द देखिए—

छिति छिति डोलत कलोल भरे मेघ तुम,
ताप निरवारन सलिल बरसावहौ।
मालती कहूँ जो रावरे की दीठि परि जाय,
कहियो सँदेसो यों दया कौ सरसावहौ॥
तेरे ही वियोग में सो व्यथित भयो है माधौ,
भागि गई नैनन की निंदिया छिपाय कै।
प्राननि की पास बंधि राख्यो है आसनि सौं,
नाहि उपाय कीजै सुख [illegible]॥

इसी भाव पर कविवर [illegible] का छन्द देखिए—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

एक संस्कृत-कवि ने और भी कहा है—

आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वती प्राणबन्धम्

है सखी प्रानन राखि रही तिया आस की पासनि बाँधि भई नई ॥

९—भगवान् कृष्ण के संकेत पर चतुर दूतिका राधिका को संकेत-स्थल पर लताकुंज में बुला लाई और भगवान् से कहने लगी कि देखो इनका वैसे ही सत्कार करना जैसे शंकर ने शंकरी या श्रीपति ने लक्ष्मी का किया है। इस भाव पर पहले दासजी का छंद देखिए—

लेहु जु ल्याई हौं गेह तिहारे, परे जोई नेह सँदेस खरे मैं।
त्रैयै भुजाभरि मेटौ बिथानि, समैयै जू तौ सब साध भरे मैं॥
सम्भु ज्यौं आधहि अंग बसाओ, लगाओ कि श्रीपति ज्यों हियरे मैं।
'दास' भरो रसकेलि सकेलि, सु आनँदबेलि सी मेलि गरे मैं॥

नैननि के तारनि में राखौ प्यारे पूतरी कै,
मुरली ज्यों ल्याय राखौ दसन बसन मैं।
राखौ भुज बीच बनमाली बनमाला करि,
चन्दन ज्यों चतुर चढ़ाय राखौ तन मैं॥
'केशवराय' कल कंठ राखौ बालि कठुला कै
करम करम कैहूँ आनी है भवन मैं।
चंपक कली सी बाल सूँघि सूँघि देवता सी,
लेहु प्यारे लाल, इन्हैं मेलि राखौ तन मैं॥

—केशव

देव की उक्ति देखिए—

लेहु लला उठि लाई हौं बालहिं लोक की लाजहिं सों लरि राखी।
फेरि इन्हें सपनेहु न पाइयत, लै अपने उर में धरि राखी॥
'देव' लला अबला नवला यह, चन्द्रकला कठुला करि राखी।
आठ हू सिद्धि नवों निधि लै घर बाहर भीतर हू भरि राखी॥

ये तीनों छंद प्रायः एक ही भाव पर लिखे गये हैं। इस विषय की रचना पर चरित्ररक्षा के ठेकेदार आलोचक भले ही आपत्ति करें, परन्तु यह वर्णन कोई नई बात नहीं है। इसका अपराध केवल रीतिकालवाले कवियों के ऊपर ही नहीं लगाया जा सकता, प्रत्युत यदि यह वास्तव में अपराध ही है तो संस्कृत-साहित्य के बड़े-बड़े आचार्य भी इस दोष से मुक्त न हो सकेंगे; क्योंकि वही तो हिन्दी कवियों के पथप्रदर्शक हैं। जैसा मार्ग उन्होंने प्रशस्त कर दिया, कालान्तर में हिन्दी के कवियों ने उसी मार्ग पर पदार्पण किया। इसमें हिन्दीवालों का कोई अपराध है ही नहीं।

१०—नायिकाभेद के अन्तर्गत कवियों ने खण्डिता का उल्लेख किया है। खण्डिता का लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रः
नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्गः

उदय होत दिननाथ इत, उत अथवत निसिराज ।
द्वैघण्टायुत द्विरद के छवि धारत गिरि आज ॥

केशव ने अपने छन्द का भाव इस श्लोक में दिया है।

कीर्णान्धकारालकशालमाना,
निबद्धतारास्थिमणिः कुतोऽपि ।
निशापिशाची व्यचरद्दधाना,
महान्त्युलूकध्वनिफेत्कृतानि ॥

—त्रिदेववाग्भट्ट

महाकवि केशवदास रात्रि का वर्णन करने बैठे। आपको अनोखी बात सूझी —

प्रेत की नारि ज्यों तारे अनेक, चढ़ाय चलै चितवै चहुँ घाती।
कोढ़िनि सी कुकुरे कर कंजनि, 'केशव' सेत सबै तन ताती ॥
भेटत ही बरै ही अबही, त्यों गई ही सुखै सुख साती।
कैसी करौं अब कैसे बचौं, बहुत्यो निसि आई किये मुखराती ॥

देवजी प्रभात का वर्णन करने लगे। कवियों को नायिकाओं से प्रायः अधिक सहानुभूति होती है। सहृदय ठहरे, क्या करें, अबलाओं का दुःख देखा नहीं जाता। केशव ने रात्रि को प्रेत की नारी और कोढ़िनी बनाया तो देवजी ने प्राची दिशा को पिशाच्चिनी बना डाला।

वा चकई को भयो चितचीतो, चितौति चहूँदिसि चाय सौं नाँची।
ह्वै गई छीन कलाधर की कला, जामिनी जोति मनो जम जाँची।

बोलत बैरी बिहंगम 'देव', सँजोगिनि की भई सम्पति काँची ।
लोहू पियो जो बियोगिनि को, सो कियो मुख लाल पिसाचिनी प्राची ॥

संयोगिनी की सम्पत्ति काँची करने के अपराध पर वास्तव में प्राची दिशा को यही उपाधि मिलनी चाहिए थी ।

और भी—

सीसे करेजो बियोगिनी को, घनस्याम के राग के रंगनि राँची ।
कामरी कारी पै रंग चढ्यो, रवि देखि लजानि छिनेक की प्राची ॥
कैं मदिरा रस माची मनो, कहूँ माँस हूँ आगिन नाची पिसाची ।
प्राची में आजु सकारेहि ते, किधौं होरी कहूँ चढ़े भूत की नाची ॥
—[illegible]

बेनी प्रवीन ने प्राची दिशा पर कुछ कृपा की । उन्होंने इसे पिशाची नहीं बनाया ; केवल सपत्नी बनाकर छोड़ दिया । अपनी शान में बेनीजी ने अच्छा ही किया । परन्तु स्त्रियों को सपत्नी, पिशाचिनी नहीं, राक्षसिनी एवं व्याघ्रिणी से भी भयंकर प्रतीत होती है ।

यह सोग बिदेस बिनाय पिया, घरै आवन की नहीं ध्यानी भई ।
परदेस अनेक कलेस कथा, सब जानी यथा बनमाली भई ॥
हँसिकै कहै 'बेनी प्रबीन' अबै, रस-केलि कला की कहानी भई ।
सब या दिसि पूरब पूरन मैं लगी, पैरि सौति सी जानी भई ॥

यह भाव कवि-कुल-कुमुद-कलाधर श्री [illegible] का है । उन्होंने 'शृंगार-[illegible]' में इसे इस प्रकार लिखा है—

समायाते कान्ते कथमपि च कालेन बहुना,
कथाभिर्देशानां सखि रजनिरर्धं गतवती।
ततो यावल्लीलाविरहकुपितास्मि प्रियजने,
सपत्नीव प्राची दिगियमभवत्तावदरुणा ॥

यह भाव बड़ा ललित है। इसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर कविवर रामरत्नजी ने भी इस पर एक सवैया लिखा है।

१२—वंशीधर की तान में भी न जाने कौन सा आकर्षण था कि जिसे सुनकर गोपांगनाओं को आत्म-विस्मृति हो जाया करती थी। जाती थीं वे दही बेचने परन्तु बेचती थीं अपना हृदय। इस भाव को कविवर देवजी ने कैसी सुन्दरता से चित्रित किया है।

पुकारि कही मैं दही कोउ लेउ, यही सुनि आइ गये इत धाय।
इतै कवि 'देव' चितै ही चले, मनमोहन मोहनी तान सी गाय॥
न जानति और कछू तब ते, मन माहिं वही पै रही छबि छाय।
गई तौ हुती दधि बेचन काज, गयो हियरा हरि हाथ बिकाय॥

इसी भाव पर कविवर 'दास' ने निम्नांकित छन्द लिखा है—

जिन्हैं मोहन काज सिंगार सजे, तिनहीं के सरूप लोभाय गई।
न मुठी को चलाय सकी तिनपै, तिनहीं के मुठी में समाय गई।
वृषभानु-लली की दसा कहै 'दास', ठगौरी किये ही ठगाय गई।
बरसाने गई दधि बेचिबे को, विन दामन आप बिकाय गई॥

१२—वियोग-वर्णन करने में हिन्दी-कवियों ने हद कर दी है। वियोग की बारह अवस्थाएँ होती हैं, इनमें मरण के वर्णन का रीतिकारों ने निषेध किया है। परन्तु अन्य दशाओं का वर्णन प्रायः सभी रीति-ग्रन्थों में उपलब्ध है। इनमें एक दशा का नाम उद्वेग है। जब प्रेमिका चित्त में अत्यन्त व्याकुल होने के कारण निराश्रित हो जाती है जो उसकी वियोगावस्था को उद्वेग कहते हैं। कविवर बिहारीलाल ने भी एक ऐसी विरह-विधुरा वनिता का वर्णन किया है, जिसकी विरहावस्था उद्वेग तक पहुँच गई थी।

> हौं ही बौरी बिरह बस, कै बौरो सब गाँव,
> कहा जानि ये कहत हैं, ससिहि सीतकर नाँव॥

नायिका शीतकर के गुणों की आलोचना करती है। उसको इसके नामकरण पर आपत्ति है। यह तो सुधाधाम होकर विष फैलाता है। लोग इसे शीतकर क्यों कहते हैं, जब कि यह विरह-विधुरा वनिताओं को जलाये डालता है? देवजी ने इस विषय पर बहुत कुछ कहा है। परन्तु यहाँ पर हम उनका एक ही छन्द उद्धृत करेंगे।

> रैनि सोई दिन इन्दु दिनेस, जोन्हाई है घाम घनो विष न्हाई।
> फूलनि सेज सुगन्ध [illegible] सूल उठै मनु सेल दियो गहि गई॥
> दारु शीतल [illegible] [illegible] 'देव' [illegible]।
> [illegible] ॥

और भी —

सिन्धु के सपूत अरु सिन्धुतनया के बन्धु,
आकर पियूष औ प्रभा के समुदाई के।
कहे पदमाकर गिरीस के चढ़े हो सीस,
औषधि के नाथ कुल कारन कन्हाई के।
ऐरे मतिमन्द चन्द आवत न तोहि लाज,
बनिता वियोगिनि सतावत अघाई के।
ह्वै के सुधाधाम काम विष को बगारै,
अरु ह्वै कै दिजराज काज करत कसाई के।

—पद्माकर

और भी —

तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः,
द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः,
त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि॥

—कालिदास

चन्द्रमा पर यों तो सभी कवियों ने एक से एक बढ़कर छन्द कहे हैं। परन्तु इन सबमें महाकवि श्रीहर्ष का चन्द्रोपालम्भ अद्वितीय है। संस्कृत और हिन्दी-साहित्य में कहीं भी चन्द्रमा पर ऐसी मार्मिक उक्तियाँ देखने में नहीं आवेंगी।

१४—ग्रीष्मकालीन ज्योत्स्नावती रात्रि में अपनी सखियों के साथ राधिका सौध में विहार कर रही थीं। वह स्फटिक-शिला का बना हुआ था। उसका फर्श भी नितान्त उज्ज्वल था। राधिका की समवयस्का वनिताएँ उनके चारों ओर खड़ी थीं। उधर आकाश में भी यही दृश्य था। चन्द्र-प्रकाश के कारण आकाश स्वच्छ हो रहा था। चन्द्रमा को नक्षत्रावली घेरे हुए थी। देवजी को यह समझ पड़ा कि आकाश नहीं है, यह तो विमल दर्पण है जिसमें राधिका और उनकी सखियों का प्रतिबिंब दिखलाई पड़ता है। बहुत दूर होने के कारण ये प्रतिबिम्ब कुछ छोटे मालूम होते हैं। कैसी सुन्दर उक्ति है। यह कल्पना देव जैसे कवियों के ही हृदय में आ सकती है—

फटिक-सिलानि सौं सुधार्यौ सुधा-मंदिर,
उदधि दधि को सो अधिकाई उमगे अमंद।
बाहर ते भीतर लौं भीति न दिखैए 'देव'
दूध कैसो फेन फैलो आँगन फरसबन्द॥
तारा सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिलि होति,
मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरन्द।
आरसी से अम्बर में आभा सी उजारी लगै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द॥

इसी भाव पर कविवर ठाकुरजी ने अपना छन्द निर्माण किया है।

आरसी कौ आँगन सोहायो छवि छायो,
नहरनि मैं भरायो जल उज्जल सुमनमाल ।
चाँदनी विचित्र लखि चाँदनी बिछौना पर,
दूरि के चँदोवन को बिलसै अकेली बाल ॥
'दास' आसपास बहु भाँतिन विराजैं धरे,
पन्ना पोखराज मोती मानिक पदिक लाल ।
चन्द्र प्रतिबिम्ब सों न न्यारो होत मुख, औ न
तारे प्रतिबिम्ब ही ते न्यारे होत नग जाल ॥

१५—एक गोपिका से भगवान् कृष्ण की घनिष्ठता हो गई थी। उसकी अन्य सखियाँ उसे इस प्रवृत्ति के लिए लांछित करने लगीं। बेचारी चुपचाप सबकी सुन लिया करती थी। कुछ कहती नहीं थी। सहनशीलता की भी कुछ हद होती है। अन्त में सखियों के नैतिक आक्षेप से तङ्ग आकर वह कहने लगी—

बीस्यो बंस बिरद में बौरी भई बरजति
मेरे बार बार कोई पास आनि बैठै, जनि ।
सिगरी सयानी तुम, बिगरी अकेली हौं ही,
गोहन में छाँड़ो मोसों भौंहनि उमेठौ जनि ॥
कुलटा कलंकिनी हौं, कायर कुमति कूर,
काहू के न कांम की, निकाम याते ऐंठौ जनि ।
'देव' तहाँ बैठियत जहाँ बुद्धि बाढ़े, हौं तो,
बैठी हौं विकल, कोई मोहि मिलि बैठौ जनि ॥

इसी भाव पर भारतेन्दु बाबू ने एक छन्द लिखा है—

हौं कुलटा औ कलंकिनी हौं, अब तो हम छाँड़ि दियो कुल गैलो।
आछी रहौ अपने घर में, तुम ना यहाँ आय करेजनि छैलो॥
लागि न जाय कलंक तुम्हैं, चुप बैठी रहो सँग लागी न टोलो।
बावरी जो पै भई सजनी, तो चलौ हम सौं जनि आय कै बोलो॥

हमारे विचार से दोनों ही छन्द बड़े उत्कृष्ट हैं। इन दोनों के भाव में उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। वर्णन दोनों का सुन्दर है।

१६—चिर-प्रवास के अनन्तर प्रियतम परदेश से आया। विरह-विधुरा वनिता को मानो पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। उसके हृदय का आनन्द या तो भुक्तभोगी समझ सकता है या देव सरीखे मार्मिक कवि। उसके आगमन से पहले ही से कुछ ऐसे शुभ-सूचक सगुन हो रहे थे जिससे उसे अनुमान हो गया था कि प्रियतम अवश्य आते होंगे। बस, इसी अनुमान के आधार पर वह अपने नये वस्त्र पहनने लगी। इसी भाव को कविवर बिहारीलालजी ने बड़ी उत्तमता से वर्णित किया है। देखिए:—

मृगनैनी दृग की फरक, उर उछाह तनु फूल।
बिन ही पिय आगम उमगि, पलटन लगी दुकूल॥

अब इसी भाव पर देवजी का छन्द देखिए—

धाई खोरि-खोरि ते बधाई पिय-आवन की,
सुनि कोरि-कोरि रस भामिनि भरति है।

२१—सन्देश-काव्य विप्रलम्भ-शृङ्गार का एक अंगीभूत विषय है। इसी आधार पर मेघ, पवन इत्यादि कई प्रकार के दूत-काव्यों की रचना हो चुकी है। जिन लोगों ने काव्य का अनुशीलन किया है उनसे गोपिका और उद्धव के संवाद वाला प्रसंग छिपा नहीं है। इस विषय पर कविवर सूरदास ने बहुत कुछ लिखा है। और ऐसा सुन्दर लिखा है कि प्रकारान्तर से उस पर अधिक लिखने का क्षेत्र ही नहीं रह गया है। परन्तु इसके होते हुए भी प्रतिभासम्पन्न कवि सब कुछ लिख सकता है। कविवर नन्ददासजी जब अपना 'भँवरगीत' लिखने बैठे तो उन्होंने यह बात भली भाँति सिद्ध कर दी कि इस पर अभी और कुछ लिखा जा सकता है। कदाचित् इसी प्रेरणा के अनुसार कविवर देवजी ने निम्नलिखित छन्द निर्माण किया है—

जोगहि सिखैहैं ऊधो जो गहि कै हाथ हम,
सो न मन हाथ, ब्रजनाथ साथ ह्वै चुकी।
देव पंचसायक नचाय खेलि पंचन मैं,
पंचहू करनि पंचामृत सो अचै चुकी॥
कुलबधू ह्वै कै हाय कुलटा कहाई अरु,
गोकुल मैं कुल मैं कलंक सिर लै चुकी।
चित होत हित न हमारे नित और सो तो,
वाही चितचोरहि चितौत चित दै चुकी॥

इसी विषय पर कविवर रत्नाकरजी का निम्नलिखित छन्द देखिए—

नेम व्रत संजम के पींजरे परे को जब,
लाज कुलकानि प्रतिबंधहि निवारि चुकी।
कौन गुन गौरव कौ लंगर लगावै जब,
सुधि बुधि ही को भार टेक करि टारि चुकी॥
जोग 'रत्नाकर' में सांस घूँटि बूड़ै कौन,
ऊधौ हम सूधौ यह बानक बिचारि चुकी।
मुक्ति मुक्ता कौ मोल माल ही कहा है जब,
मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकी॥

दोनों ही छन्द सुन्दर हैं। यदि देव ने अपने वर्णन में चमत्कालङ्कार का आश्रय लिया है तो रत्नाकरजी ने स्पष्टता का।

२२—आजकल विज्ञान का युग है। जो बात तर्क की कसौटी पर नहीं कसी जा सकती उसका कोई मूल्य नहीं है। ऐसी बात की सत्यता पर अशिक्षित अथवा अर्धशिक्षित व्यक्ति भले ही विश्वास कर लें, परन्तु आधुनिक शिक्षा-दीक्षित महानुभाव तो इसे मानने के लिए तैयार ही नहीं। वे लोग इसे ढोंग का नमूना कह देते हैं। सुधारवादी जनता ढोंग के समर्थन को भले ही अनादर की दृष्टि से देखे, परन्तु स्नेही व्यक्ति-गण इसके समर्थन में अपना गौरव समझते हैं। वैदिकों ने इसे विडम्बना का नाम दे रक्खा है। पर विडम्बना प्रायः सकारण ही होती है।

(१) स्तोऽपि विडम्बनीय—अर्थात् वस्तु के स्पष्ट होने पर भी उसका वर्णन अवर्णनीय है।

(२) असतोपि निबन्धनीय—अर्थात् पदार्थ तो असत्य है पर उसका वर्णन किया गया है।

(३) नियमेन निबन्धनीय—अर्थात् जिस पदार्थ का प्राचीन काल में जैसा वर्णन हुआ है वैसा ही वर्णन करना।

(४) विकल्पेन निबन्धनीय—अर्थात् जिसका वर्णन दो प्रकार से किया जाय।

कविवर् राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में इसपर बहुत कुछ लिखा है। पाठकों के विनोदार्थ हम असतोपि निबन्धनीय पर एक छन्द उद्धृत करते हैं। इसे साधारण लोग भले ही ऊटपटाँग समझें; परन्तु काव्य के विद्यार्थियों को तो इसे साहित्यिक स्वयंसिद्धि ( Axiom ) ही मानना चाहिए। यदि वे इसी पर शास्त्रार्थ खड़ा कर देंगे तो समझ लीजिए इनके साहित्य-अध्ययन की इतिश्री यहीं हो गई। रेखागणित के अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी को पहले ही यह मान लेना चाहिए कि रेखा में लम्बाई मात्र होती है, चौड़ाई होती ही नहीं, यद्यपि व्यावहारिक जगत् में ऐसी रेखा बन ही नहीं सकती। यह गणितशास्त्रियों की मस्तिष्क-शक्ति की प्रसूति है। वह निबन्धना इस प्रकार है—

गिर महँ जहँ तहँ रतन अल्प जल महँ मराल गन।
सुर सुरसरि महँ, वारि गजादिक अम्बुज सरितन॥
तम मूँठी महँ गहव अँधेरहि सूचीभेदन।
कीर्ति पुण्य शुभ्रत्व अकोरति अघ अति करिपन॥

कहहिं कृष्णता रचना तिमि प्रताप महँ सुकवि जन ।
क्रोध राग को रचना पान चकोरी शशि किरन ॥
तरुण नारि मद मुख कुल्लिका करत बकुल पर ।
पुष्पित सो नग होत तथा पद के आघात पर ॥
फूलत वृक्ष अशोक बिना ऋतु मासान्तर ।
सकल जलधि शैवाल चंद्रिका शुक्ल पक्ष भर ॥
चन्द्र किरण भरि अंजुलिहि भरत कहत बुध जन गागर ।
निशा वियोगी चक्र कहँ 'भानु' सुकवि कहँ गुण सागर ।

( श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' )

इसका समर्थन राजशेखर जी ने इस प्रकार किया है ।

पादाहतः प्रमदया विकसत्यशोकः
शोकं जहाति बकुलो मुखसीधुसिक्तः
आलिंगितः कुरबकः कुरुते विकासं
आलोकितस्तिलक उत्कलिको विभाति ।

प्रसंग पाकर कविवर देवजी ने इसी सामग्री का ऐसा सुन्दर उपयोग किया है । जब वे प्रौढ़ा अधीरा का उदाहरण तैयार करने लगे तो उन्होंने इसी सामग्री से ऐसा सुन्दर व्यंग कहा जो साहित्यिक दृष्टि से मनोहर है—

आये हौ आलिन भेंटि तुम्हें उठि, फूल धरे अनुराग [illegible] ।
देखहिं जानि तुम्हें जु सुहागिन आनन [illegible] ॥
तौलौं सनाथ हौ नाथ कहा करि, जो दिन [illegible] ।
होय अशोक तुम्हीं कुल लौं, [illegible] ॥

६

२३—रीतिकारों ने विप्रलंभ शृङ्गार के पाँच भेद बताये हैं। (१) अभिलाषहेतुक, (२) ईर्ष्याहेतुक, (३) विरहहेतुक, (४) प्रवास-हेतुक और (५) शापहेतुक।

इसमें अभिलाषहेतुक विषय का वर्णन करते हुए देवजी ने निम्नलिखित छन्द कहा है। यह गुण-श्रवण तथा चित्त-स्वप्न एवं प्रत्यक्ष दर्शन का एकत्रित उदाहरण है। यहाँ नायक के गुण-श्रवणादि से अनुरक्ता नायिका का पूर्वानुराग वर्णित है।

देखिए:—

प्रेम कहा तिनसों पहिले हरि, कानन आनि समीप किये तै।
चित्र चरित्र न मित्र भये, सपनेहु में मोहि मिलाय लिये तै॥
'देवजी' दूर तें दौरि दुराय कै, प्रेम सिखाय दिखाय दिये तै।
वारिज सें विकसे मुख वै, निकसे इत ह्वै निकसे न हिये तै॥

चित्र-दर्शन पर महाकवि कालिदास का इसी प्रकार का एक परमोत्कृष्ट छन्द है—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्
आत्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥

—मेघदूत

गेरू सों प्यारी को चित्र बनाय, सिला पै जबै निरखों धरि ध्यान में।
वाके दुओ पद-पंकज पै, परि कै जबै मेटनि चाहों गुमान में॥

बैरी बिधाता हमारो हहा, मिलिबो नहिं चाहत ऐसी दसान में ।
आनि घिरै घने बारि के बुंद, सरोरुह सी दुखिया अँखियान में ॥

—हरिनाथ

इसी प्रकार स्वप्न-दर्शन का विषय है । देवजी ने इस पर एक बड़ा ही मार्मिक छन्द कहा है । इस छन्द की भाव-सामग्री बिहारी के निम्नलिखित दोहे से संकलित की गई है, यद्यपि इनका विषय एक नहीं है । वह दोहा इस प्रकार है—

यों दलिमलिअमि निर्दयी, दई कुसुम से गात ।
कर धरि देखो धरधरा, अजहूँ न हिय को जात ॥

देवजी का छन्द इस प्रकार है—

धाय के अंक में मोह निसङ्क हौं, पंकज सी अँखियानि कुराकुरी ।
ज्यों सपने में मिली अपने, पिय प्रेम पगी छबिहू की छलाछली ॥
गाढ़े ही गाढ़े गहो भुज गाढ़े, सो बाढ़ी कछू के हिये में सलासली ।
'देव' जगी रतियाँ हू गई, न गिरा पै गई छतिया की धकाधकी ॥

इसी को काव्य-कौशल कहते हैं । देवजी ने अपने स्वप्न-दर्शन में कितना सौन्दर्य उपस्थित कर दिया है । स्वप्न-दर्शन पर अन्य कवियों ने भी बड़े बड़े सुन्दर छन्द कहे हैं । परन्तु देवजी का यह छन्द अपने ढंग का निराला ही है ।

२४—अँगूठी की रचना राज-महल के ही कौशल से हो गई है । संस्कृत कवियों ने इस पर खूब लिखा है ।

उद्धूय बाहुयुगमायतगात्रयष्टिः
प्रातः कुरंगनयनी विजहाति जृम्भाम् ।
मन्यामहे स्मररणात् पुरतो निवृत्तं
कामो धनुः कुटिलतारहितं करोति ।

और भी—

मय्येवमस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहःप्रणयमप्रतिपाद्यमाने ।
भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताद्याः
भग्नं शरासनमिवातिरुषा स्मरस्य ।

—कालिदास

देवजी ने धनुष को तुला बनाया है और नेत्रों को पलड़ा। उसमें कन्दर्प-जौहरी द्वारा बाल्यकाल और तरुणकालरूपी जवाहिरों को तौलाया है। नई सूझ है। हमारे विचार से ऐसा रूपक अन्यत्र मिलना कठिन है।

भारी भर्‌यो विवि मोहन रूप, सुडोर दुहूँ लचि छोरनि डोलै।
नीको चुनी को लिलार मैं टीको, सुटेकि खिलार खरे गुन सोलै॥
वालपनो तरुनापनो लाल को, 'देव' बराबरी के बल बोलै।
दोऊ जवाहिर जौहरी मैन, सुनैन पलानि तुला धरि तोलै॥

यही देव की मौलिकता है। प्राचीन परिपाटी पर पदार्पण करके आपने नये ढङ्ग पर लिखा है, और ख़ूब लिखा है। उसी भाव पर एक अज्ञात कवि ने निम्नांकित छन्द निर्माण किया है—

जाहरी मैन को नीको तुला, जुग नैन पला जहँ लाग्यो बिसाल है।
है रतिनायक को धनु कैधौं, चलावत सायक जामें कराल है॥
भौंहैं लखे प्रिय भावती की, उपजै हिय माहिं नयो एक ख्याल है।
ढाल पै साँगी धरी है किधौं यह सान पै कैधौं चढ़ी करवाल है॥

इस छन्द के रचयिता महोदय ने सन्देहालङ्कार का आश्रय लेकर कई कई विचार बाँधे, परन्तु उनमें वह कोमलता नहीं आई जो देव के छन्द में है। वास्तव में अनुकरण अनुकरण ही है। वह मौलिकता के सामने कभी नहीं ठहर सकता। इसी को भावसंहार कहते हैं। अनुकरणकर्ता महोदय देवजी की छाँह भी नहीं छू सकते हैं।

२५—खंडिता नायिका के निम्नलिखित वर्णन में भी देवजी ने विशेष चमत्कार दिखाया है, यद्यपि इसकी साहित्य-सामग्री बिहारी के दोहे से ली गई मालूम होती है। दोहा इस प्रकार है—

बाल कहा लाली भई, लोयनि कोयनि माँह।
लाल तिहारे दृगन की, परी दृगनि में छाँह॥

यह खंडिता और उसके अपराधी नायक का संवाद है। नायक ने पूछा कि हे प्रिये, आज तुम्हारे नेत्रों में ललाई क्यों है। खंडिता ने उत्तर दिया कि कुछ नहीं, आपके नेत्रों की छाया इनमें पड़ी है। कैसा सुन्दर उत्तर है। कैसा मार्मिक चमत्कार है। देवजी का छन्द इसी भाव के [illegible] है।

'कवि देव' घटा उनई जु नई, बनभूमि भई दल दूकनि सों।
रँगराती हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर की भूकनि सों॥

( ५ )

ठाढ़ी चितौत चकोर भयो, अनतै न इतै तू कहूँ चित दीजतु।
सामुहैं नंदकिसोर सखी, कवि को मुसक्यानि सुधारस भीजतु॥
भाग ते आइ उओ 'कवि देव', सु देख भटू भरि लोचन लीजतु।
तेरे री चंदमुखी मुख-चन्द पै, पूरन चन्द निछावरि कीजतु॥

( ६ )

आई ही गाइ दुहाइबे कों, सु चुखाइ चली न बछान को घेरति।
नैकु डराय नहीं कब की, वह माइ रिसाइ अटा चढ़ि टेरति॥
यों 'कवि देव' वड़े खन की, वड़रे दृग बीच बड़े दृग फेरति।
हौं मुख हेरति ही कब की, जब की यह मोहन को मुख हेरति॥

( ७ )

कूल चली जल केलि के, कामिनि, भावते के सँग भाति भली सी।
भीजे दुकूल में देह लसै, 'कवि देव' जू चम्पक चारु दली सी॥
वारि के बूँद चुवैं चिलकैं, अलकैं छवि की छलकैं उछली सी।
अञ्चल भीन झकैं झलकैं, पुलकैं कुच कन्द कदम्ब कली सी॥

( ८ )

सुन्दरि सोवति मन्दिर मैं, कहूँ सापने मैं निरख्यौ नँदु-नंद सौ।
त्यों पुलक्यौ जल सों झलक्यौ उर, औचक ही उचकौ कुचकंद सौ॥
तौ लगि चौंक परी कहि 'देव', सु जान परौ अभिलाप अमन्द सौ।
आलिनि को मुख देखत ही, मुख भावती को भयो भोर कौ चन्द सौ॥

( ९ )

देव सुरासुर सिद्ध बधून की, एती न गर्ब जितौ इह ती को।
आपने जोबन के गुन कै, अभिमान भरै जग जानत फीको॥
काम की ओर सकोरति नाक, न लागत नाक हू नायक नीको।
गोरी गुमानिन ग्वारि गमारि, गिनै नहिं, रूप रती को रतीको॥

( १० )

सोवत तें सपनौ जान्यौ नहीं, यह सोवत मैं घर आयौ हमारे।
पीत पटी कटि सों लपिटी, उर सांवरे सुंदर रूप सँवारे॥
देव अबै लगि आंखिन तें, यह बांकी बिलोकनि टरै नहिं टारे।
सापने मैं चित चोरि लियो, यह नारि को मोर-पखौवनवारे॥

( ११ )

सापने मैं गई देखन हौं सुनि, नाचत नंद जसोमति को नट।
वा मुसक्याइ के भाव बताइ कै, मेरोइ खैंचि खरो पकर्यो पट॥
तौ लगि गाय रँभाइ उठी, 'कवि देव', बधूनि मथ्यौ दधि को घट।
चौंकि परी तब कान्ह कहूँ न, कदंब न कुंज न कालिंदी को तट॥

( १२ )

देव मनावत मोहन जू, पग दै अनुरागि रहैं अनखौहैं।
[illegible] दुराइ सखी, अब [illegible] सौहैं [illegible]।
नाह सों नेह [illegible], नहि [illegible] चितौनि चितौति न सौहैं।
मानत नाहि [illegible], [illegible] सौहैं।

( १३ )

ता दिन तें अति व्याकुल है तिय, जा दिन तें पिय पन्थ सिधारे।
भूख न प्यास बिना व्रजभूषन; भामिनि भूषन भेष बिसारे॥
पावत पीर नहीं 'कवि देव', करोरिक मूरि सबै करि हारे।
नारि निहारि निहारि चले, तजि वैद बिचारि बिचारि बिचारे॥

( १४ )

अरि कै वह आज अकेली गई, खरिके हरि के गुन रूप लुही।
उनहू अपनों पहिराय हरा, मुसकाइ के गाइ के गाय दुही॥
'कवि देव' कह्यौ किनि काऊ कछू, तब तें उनके अनुराग छुही।
सबही सों यही कहै बाल-बधू, यह देखौ री माल गुपाल गुही॥

( १५ )

श्री वृषभानलली मिलि कै, जमुनाजल केलि कों हेलिनु आनी।
रोमवली नवली कहि 'देव', सु सोने से गात अन्हात सुहानी॥
कान्ह अचानक बोलि उठे, उर बाल के व्याल बधू लपटानी।
धाइ को धाइ गही ससवाइ, दुहूँ कर झारत अंग अमानी॥

( १६ )

यह तो कछु भामिनी कोसौ लसै, मुख देखत ही दुख जात है ह्वै।
सफरी मद मोचन लोचन ये, परिहैं कहूँ मानों चितौति ही च्वै॥
कवि 'देव' कहै कहिए जुग जो, जल जात रहे जलजात में व्वै।
न सुने नवौ काहू कहूँ कबहूँ, कि मयंक के अंक में पंकज द्वै॥

( १७ )

यह कैधौं कलाधर की की कला, अथवा किधौं की कैधौं सची ।
किधौं कौन के भौन की दीप-सिखा, सची कौन के भाग तें भाल रची ॥
तिहुँ लोक की सुन्दरताई की एक, अनूपम रूप की रासि सची ।
नर, किन्नर, सिद्ध, सुरासुरहू की, बढ़ि बधूनि बिरञ्चि रची ॥

( १८ )

कहु कौन की चम्पक चारु लता, यह देखि सबै जग भूलि रहीं ।
'कवि देव' ये तौ मैं कहा बिलसै, बिच में फल मैं परि फूलि रहीं ॥
तिहि ऊपर को यह सोभ नवोतम, तौन चहूँ दिसि झूलि रहीं ।
चित मैं चितु चोरत कोए तहीं, नवनील सरोज से फूलि रहीं ॥

( १९ )

स्याम सयाने पराधिन है करो, आजु को काहि सयानु है दीनो ।
'देव' कहै हरि टेर कुटीर मैं आपनो भेद पठै उहि दीनो ॥
भूलि गई कछु चौचक ही, पहु है गई पै कछु चाहि न कीन्हो ।
हेलि भले हिलनी मैं हले, दिन ही मैं दरीची भयो दल कीन्हो ॥

( २० )

बाल ललाम मैं बाल की बोल, सखी कहुँ संग सखीन के हेरत ।
कान्ह वही इनि राधा बनी, तुरि 'देव' सो देखी हुँ सुन्दर फेरत ॥
है सब हैं एक रूप मनो कल, भामिनि सों अभिलाषनि हेरत ।
बाही निहारि नन्दकुमार, कदीक मैं चार इसारत हेरत ॥

( २१ )

पहिले सतराइ रिसाइ सखी, यदुराइ पै पाइ गहाइए तौ।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसङ्क, बड़े खन लौं उर लाइए तौ॥
अपनो दुख औरनि को उपहासु, सबै 'कवि देव' बताइए तौ।
घनस्यामहिं नैं कछु एक घरी कौ, इहाँ लगि जो करि पाइए तौ॥

( २२ )

आसव सेइ सिखाये सखीन के, सुन्दरि मन्दिर मैं सुख सोवै।
सापने मैं बिछुरे हरि हेरि, हरैइ हरैं हरनी दृग रोवै॥
'देव' कहै उठि के बिरहानल, आनँद के अँसुवान समोवै।
आजु ही भाजि गई सब लाज, हँसै अरु मोहन को मुख जोवै॥

( २३ )

या डर हौं घर ही मैं रहौं, 'कवि देव' दुरो नहिं दूतनि को दुख।
काहू की बात कही न सुनी मन, माहिं बिसारि दियो सिगरो सुख॥
भीर मैं भूले भये सखि मैं, जब ते जदुराई की ओर कियो रुख।
मोहि भटू तब ते निस द्यौस, चितौत ही जात चवाइन कौ मुख॥

( २४ )

पुकारि कही मैं दही कोइ लेउ, यही सुनि आइ गयो उत धाई।
चितै 'कवि देव' चलेई चले, मन मोहनी मोहनी तान सी गाई॥
न जानति और कछू तब तें, मन माहिं वही पै रही छबि छाई।
गई तौ हती दधि बेचन बीर, गयो हियरा हरि हाथ बिकाई॥

( २५ )

गेरेऊ अंक जो आवै निसंक तौ, हौं उनके परछाहिं छुवैहौं ।
पान खवाइ उन्हैं पहिलें तब, नाथ के हाथ के पानन खैहौं ॥
ऐसी न होइ जू हेठ पै दीपति, देव को दीप समीप दिखैहौं ।
मोहन को मुख चूमि भटू तब, हौं अपनो मुख चूमन दैहौं ॥

( २६ )

हार बिहार में टूटि परै अरु, भूषन टूटि परे हैं अमूलनि ।
जोरि सबै पहिरायो सम्हारि कै, अरु सम्हारि सुधारि दुकूलनि ॥
सीतल सेज बिछाइ कै पालव, बाल मृनालनि के दल मूलनि ।
बेनिन बेनी बनाइ लला, गहि गूँथी गुपाल गुलाब के फूलनि ॥

( २७ )

भारे हौ भूरि भराई भरे अरु, भाँति सभाँतिनु के मन भाये ।
भाग बड़े यही भामती के जिन, भावते से मनभावन पाये ॥
नेकु भलोई भली बिधि सों करि, भूमि परे जिय पाइ भुलाये ।
लाल भले हौ भले सुख दीनों, भली भई आइ भले बनि आये ।

( २८ )

भोर ही भौन में आयो आपन, जागी तिनै कै हुतै हम फेरे ।
लाल बिलोकि के लाज भरी तू, काहे ते नैन बिलोकत फेरे ॥
बोलि उठी सुनि के प्रिय बोल, 'सुंदर' दई भरि फेर कहे ।
[illegible] के रंग रँगे हम रावरे, रावरे रंग रँगे हम मेरे ॥

( २९ )

ब्याह की वीथि बुलाये गये सब, लोगनु लागि गये दिन दूने ।
'देव' तुम्हारी सौं बैठी अकेलियै, हौं अपने उर आनति ऊने ।
क्यों तिन्हें वासर बीतत बीर, बनाये हैं जे विधि बन्धु बिहूने ॥
कौन घरी घर के घर आवें, लगैं घर घोर घरीक के सूने ॥

( ३० )

मालिनि ह्वै हरि माल गुहैं, चितवैं मुख चेरी भये चित चाइनि ।
पान खवावैं खवासिन ह्वै कै, सवासिन ह्वै सिखवैं सब भाइनि ॥
बेंदी दै 'देव' दिखाइ के दर्पन, जावक देत भये अब नाइनि ।
प्रेम पगे पिय पीत पटी पर, प्यारी के पोंछिय मारी से पाइनि ॥

( ३१ )

होरी हरें हरें आइ गई, हरि आये न हेरि हिये हहरैगी ।
बानि बनी बन बागनि की, 'कविदेव' विलोकि वियोग बरैगी ॥
नाउँ न लेऊ बसन्त को री, सुनि हाय कहूँ पछिताय मरैगी ।
कैसे कि जीहै किसोरी जो केसरि, नीर सों बीर अबीर भरैगी ॥

( ३२ )

नेह सों नीचे निहारि निहोरत, नाहीं कै नाह की ओर चितैबो ।
पीठि दै पीठि मरोरि कैं डीठि, सकोरि कैं सौंह सौं भौंह चढ़ैबो ॥
प्रीतम सो 'कवि देव' रिसाइ कै, पाइ लगाइ हिये सों लगैबो ।
तेरो री मोहि महासुख देत, सुधा रसहू तें रसीलो रिसैबो ॥

( ३३ )

मालती सों मिलिए निस बासरहू, या गुनहानि तें ज्यौं सकुचैहै ।
प्रीति पुरानी पुरैनि के रैनि, रहौ नियरे न विपत्ति परैहै ।
ऊपर ही गुन रूप अनूप, निरन्तर अन्तर मैं पतिऐहै ॥
ये अलि दूलह भूलेहू देव जू, चम्पक फूल के मूल न जैहै ॥

( ३४ )

प्यारी के प्रान समेत पिया, परदेस पयान की बात चलावै ।
'देव जू' छोभ समेत कृपा, छतिया मैं दिवाकर की छवि छावै ॥
बोलि अली वन बीच बसन्त कौ, मीचु समेत नगीच बतावै ।
काम के तीर समेत समीर, सरीर मैं लागत पीर बढ़ावै ॥

( ३५ )

कौन के होइ नहीं मैं भुलानु, सुजान सबै सुख देखन ही दंद ।
जाहि लखैं बिलखैं यहि भाँति, परैं मनु मौलि सरोरुह पै चंद ।
भाखी तें प्यारी तिहारी सुन्द-सुति, चन्द-समान दयानन हैं फंद ॥
आनन-ओप मलीन न होति, पै हीन के आनि दिवाकर की छंद ॥

( ३६ )

[illegible] हौं भौंर कि ये सब भौरहि, कोमल [illegible] को औरैं [illegible] ।
यासें इन्हें तन ताप निराजु पै, मेरे हिये न [illegible] [illegible] [illegible] ॥
ये जहँ कोकिल कूक सुनी, [illegible] [illegible] सुने [illegible] [illegible] [illegible] ।
लोग सबै पे [illegible] री [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

( ३७ )

डोलति हैं यह कामलतासु, लचीं कुच गुच्छ दुरूह उधा की ।
कौल सनाल कि बाल के हाथ, छिपी कटि कान्ति की भाँति सुधा की ॥
देव यही मन आवती है, सविलास वधू विधि हैं बहुधा की ।
भाल गुही मुक्तालर माल, सुधाधर मैं मनो धार सुधा की ॥

( ३८ )

बेली नवेली लतानि सों केली के, प्रात अन्हार सरोवर पावन ।
पिंजर मंजर का छहराइ, रजद्युति छाइ छपाइ छपावन ॥
सीतल मन्द सुगन्ध महा, वपुरे बिरही बपुरी नित पावन ।
आजु को आयो समीर सखी री, सरोज कँपाइ करेजो कँपावन ॥

( ३९ )

एक तुहीं वृषभानुसुता अरु, तीनि हैं वे जु समेत सची हैं ।
औरन केतिक राजन के, कविराजन की रसनायै बची हैं ॥
देवी रमा कवि देव उमा ये, त्रिलोक में रूप की रासि मची हैं ।
पै वर नारि महा सुकुमारि, ये चारि विरञ्चि विचारि रची हैं ॥

( ४० )

बाल बिलोकत हीं झलकी सी, गुपाल गरै जलविन्द की माले ।
आपुस मैं मुसक्यानी सखी, हरि देव जू बातै बनाइ बिसालै ॥
साँप ज्यों पौन गिलै उगिलै, बिष यों रचि ऊपम आनि उगालै ।
जात बुल्यो घर ही न बने, तपधीन भयो तनुधाम के घालै ॥

———

# अष्ट जाम

( १ )

सराहैं सुरासुर सिद्ध समाज, जिन्हैं लखि लाजत हैं रति मार ॥
महा मुद मंगल संग लसैं, बिलसैं अघभार निवार निवार ॥
बिराजैं त्रिलोक निकाई की ओप, मुनीन मनोहर रूप अपार ।
सदा दुलही वृषभानुसुता, दिन दूलह श्री व्रजराजकुमार ॥

( २ )

पगी पिय प्रेम जगी पहुँ जाम, रँगी रति रंग भयो परभात ।
पियो न वियोग लियो अरि भोग, पियो रस ओप [illegible] न [illegible] ॥
गुलाब मैं लौं अरुझानिन सों, छिरकैं छतियाँ [illegible] रहौ न [illegible] ।
लगैं रँग ना रँग [illegible], [illegible] सों रँग [illegible] ॥

( ३ )

लखि माधुरि दास [illegible] रहै, ललकी [illegible] उरझानि भौंहनि ।
सौंहनि सों [illegible], [illegible] सों [illegible] ।
छाकिन हूँ सों [illegible] 'देव', [illegible] सों प्रेम [illegible] ।
[illegible] सों [illegible] की, [illegible] सों [illegible] ।

( ४ )

[illegible] ।
'देव' [illegible] ।

प्यारी की पीक कपोल मैं पी के, बिलोकि सखीनि हँसी उमड़ी सी।
सोहन सैन न लोचन होत, सकोचन सुंदरि जाति गड़ी सो ॥

( ५ )

आइ हुती अन्हवावन नाइनि, सोंधो लिये कर सूधे सुभाइनि।
कंचुकि छोरि उतैं उपटैवे को, ईंगुर से अँग की सुखदाइनि ॥
'देव' सरूप की रासि निहारति, पाँय सों सीस लै सीस ते पाइनि।
ह्वै रही ठौरहीं ठाढ़ी ठगी सी, हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुराइनि ॥

( ६ )

कुंजगली ह्वै अली पठई बन, गूढ़ थली ह्वै लै आई सो नाहैं।
'देवजू' दोऊ मिले जवहीं, रस-मेह सनेह नदी अवगाहैं॥
फूलन के गहने लै दुहून के, अन्तर मैं पहिरावन चाहैं।
लालन कै गल मेलि सी राखति, बाल सो चंपकवेलि सी बाहैं ॥

( ७ )

आपुस मैं रस मैं रहसैं, विहँसैं वन राधिका कुंजविहारी।
स्यामा सराहति स्याम की पागहि, स्याम सराहत स्यामा की सारी ॥
एक ही दर्पन देखि कहैं तिय, नीके लगौ पिय प्यौ कहैं प्यारी।
'देव' सुवालम वाल के साथ, त्रिलोक भई वलि है वलिहारी ॥

( ८ )

प्यारे तिहारे के मोहिवे को, सब सौति सिंगार करैं बहुतेरो।
आपुनो सो प्रनु हारि करैं, मनुहारि निहारि सखी मन तेरो ॥
तेरे सोहाग के ऊपर वारिये, औरनि को रंग राग घनेरो।
'देव' निसाकर जोति जगै न, जगै जुगुनून को पुंज उँजेरो ॥

( ९ )

आँखिनि मैं पुतरी ह्वै रहै, हियरा मैं हरा ह्वै सबै सुख लूटै।
अंगनि संग रहै अँगराग ह्वै, जीव मैं जीवन-मूरि ह्वै जूटै॥
देव जू प्यारे के न्यारे भये, गुन सो मन मानिक ते नहिं टूटै।
और तिया सो न तो बतिया, नहि सो छतिया ते छिनौ भरि छूटै॥

( १० )

बैठी बधू गुरु लोगनि मैं, पिय के बिछुरे छिन मौन न भावै।
पाछिलो जाम गयो जुग सो, अब जामिनि क्योंकरि कामिनि पावै॥
चौंकि चितै करि त्यों छबि 'देव', नुवालनहीं रुचि सीस नवावै।
धाइ सों बैन सखीनि सों सैन, सुसैन के बैन सों नैन नचावै॥

( ११ )

जागी सखी कमला सी लिये संग, जाइ गई अलका सुख सानै।
ता दिग भौन मैं भावतो आयो, रही उठ ही सो भरा दिन ठानै॥
सोवति के बिछुरे जुग से गये, लोचन दोऊ सरोज समानै।
सेज पै सोइहैं आज [illegible], [illegible] सदा [illegible]॥

( १२ )

दान दियो हँसि प्यार सों प्यारी पै, [illegible] [illegible] और सबै [illegible]।
[illegible] गही [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥
[illegible] न लाज [illegible] [illegible], [illegible] 'देव' [illegible] [illegible] नहिं [illegible]।
लाल [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

( १३ )

चितौति वनै नहिं रंग की रैनि, इतै त्यौं चितौति सखीनि की न्याई।
चुरैल ह्वै लागी अजौं लगि लाज, सु कौ लगि बाँधे हिये महँ जाई॥
मनोज की ओज सहो न परै, कवि 'देव' रहो न परै सकुचाई।
चली रस-बातैं भली यक बार, चली मुख मोरि सखी मुसुकाई॥

( १४ )

दीन्ही विदा मुसकाइ सखीनि को, कीन्ही कछू भृकुटी भरि भालहिं।
चातुरता चित बाढ़ी किसोरी के, आतुरता लखि 'देव' गोपालहिं॥
सोहैं चितै अरसोहैं तिया, तिरछोहैं हँसोहैं सँवारति मालहिं।
पैनी चितौनि सों चूरि कै चित्त, सु दूरि भये ललचावति लालहिं॥

( १५ )

लीन्हि उसास मलीनि भई दुति, दीन्हीं फुँदी फफुँदी की छुपाइ कै।
लागी सुधारन आँगी बहू लखि, 'देव' गोपाल उठे अकुलाइ कै॥
औचकि ही उचि ऐंचि लई गहि, गोरे वहे करकोर उचाइ कै।
चंपक माल सी माल भुजानि मैं, राखी भुजानि हिये लपटाइ कै॥

( १६ )

सँग सोवत ही पिय के सुख सों, सुख सों नहिं योग वियोग सहै।
सपने महँ स्याम विदेस चले, सु कथा कवि 'देव' कहाँ लों कहै॥
तिय रोइ सकी न सुनी ससकी, हँसि प्रीतम त्यों भरि अङ्क गहै।
बड़भागी लला उर लागी जऊ, तिय जागी तऊ हिलकी न रहै॥

( १७ )

कै पढ़िको कुहुरा बहु दूर कि, वाकी निसा कहुँ काहू सुनी है ।
बोलि उठे अधरै अधरानन, सौति के हिय पै सेल घनी है ॥
चाकर चोर के पाहरू स्यान कै, नेही सिया कैसो फेर फनी है ।
मोहन श्रीघनस्याम घरीक, न नैन उघारिए रैन घनी है ॥

( १८ )

या पवई को भयो चित चीतो, चितौति चहूँ दिसि चाव सों नाची ।
ह्वै गई छीन कलाधर की छवि, जामिनि जोन्ह मनो जम जाँची ॥
बोलत बैरी विहंगम 'देव' सो, सौतिनि के घर संपति साची ।
लोहू पियो जो वियोगिनी को, छयो मानहुँ लाल पिसाचिनि प्राची ॥

( १९ )

हौंस गँवाइ, करी सुख-केलि, निसा तरुनी मद अंग सुधारे ।
जानि लियो पट घूँघट मैं, झलकैं दृग लाल भरे रतनारे ॥
'देव' जू देखि लगे ललचान, लला के कपोल पसीजि फुहारे ।
मार मनो मद मार के रोस कै, एक ही बार हजारक मारे ॥

( २० )

सुर सेज के मंदिर मे सुरमंदिर, सुंदरि स्याइ गई सुघरी ।
सुर लोगनि के पग लागनि जोर सों, ज्यों ज्यों करैं रति रौंदि खरी ॥
कहि 'देव' पलोसन हेत करी तुम, कोटि करोर सों रीस भरी ।
पिय के हिय मे बसिबो निस ही, बड़भागिनि भाग सोहाग भरी ॥

# भवानी-विलास

( १ )

श्री विधि वानी जु वेद बखानी, पुराननि जो सिव संग भवानी।
जो कमला कमलापति के सँग, 'देव' सचीस सची सुखदानी।
दीपसिखा वृज मन्दिर सुन्दरि, जागति ज्योति चहूँ युग जानी॥
सिद्धि की साधिका साधु समाधिका, सो वृजराज की राधिका रानी॥

( २ )

सुनि 'देव' अनूप कला वृजभूप की, रूपकला अकुलान लगी।
पहिचानन प्रीति अचान लगी, लखिवे को कछू ललचान लगी॥
भरि भाइक भौंह कमान चढ़ाइ कै, तानन लोचन बान लगी।
कहुँ कान्ह कहानी सी कान लगी, तब ते तन प्रान विकान लगी॥

( ३ )

स्यामा की स्याम की नाम सखीनि, सुनायो सुनावत कीन्हों कछू उन।
'देव' गोपाल गये गहि ही में, ज्यों आँक कछू बिन जाने लिखै घुन॥
खेल ते औरई खेल भयो, खिन एक न खेलत खेल सुन्यो गुन।
काननि पैठि कै आँखिनि है हरि, कै हिय बैठि रहे हरि के गुन॥

( ४ )

नंदलला वृषभानलली भये, सामुहें 'देव' संयोग सुभै कै।
लोयन लोइन लागे अनूप, दुहूँ के दुहूँ रस रूप लुभै कै॥

न्द हँसी अरविन्द ज्यों बिन्द, औंधे गये दीठि में दीठि लुभै कै।
ंज की मंजिल खंजन मानौ, उड़ै पुनि चंचुनि चंचु चुभै कै॥

( ५ )

जब ते कुँवर कान्ह रावरी कलानिधान
कान परी वाकै सुजस कहानी सी।
तब ही ते 'देव' देखी देवता सी हँसति सी
खीझति सी रीझति सी रूसति रिसानी सी॥
छोही सी छली सी छीनि लीनी सी छकी सी छीन
जकी सी थकी सी लागी थकी थहरानी सी।
बींधी सी बँधी सी विष बूड़ी सी बिमोहित सी
बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी सी।

( ६ )

रीझि रीझि रहसि रहसि हँसि हँसि उठै
साँसैं भरि आँसू भरि कहत दई दई।
चौंकि चौंकि चकि चकि औचकि उचकि 'देव'
छकि छकि बकि बकि परत बई बई॥
दुहुन के गुन रूप दोऊ बरनत फिरैं
घर न थिरात रीति नेह की नई नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय
राधामन मोहि मोहि मोहनमयी भई॥

( ७ )

बैठी सीसमन्दिर में सुन्दरि सवार ही ते
मूँदि कै केवार 'देव' छवि सो छकति है।
पीत पट लकुट मुकुट बनमाल धरि
भेष कर पिय को प्रतिबिम्बित में तकति है॥
होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिबे को
भुजनि पसारति समेटति जकति है।
चौंकति चकति उचकति चितवति चहूँ
झूम ललचाति मुख चूमि न सकति है।

( ८ )

मौन गह्यो कल कंठ कपोतनि, सारस हंस हरे चलि हेरेई।
सार्‌यो सुवानि सुवानि परी, जो सुवानि सुनै नित साँझ सवेरेई॥
चौंकत से चकई चकवा कहि, 'देव' उदै मुख-चन्द उजेरेई।
भारियै भीर करे रहैं भौंरनि, मोर चकोर रहैं घर घेरेई॥

( ९ )

देखि न परति 'देव' देखि देखि परी वानि
देखि देखि दूनी दिख साथ उपजति है।
सरद उदित इन्दु बिन्दु सो लगत लखे
मुदित मुखारबिंद इन्दिरा लजति है॥
अद्‌भुत कल सी पियूख सो मधुर बानी
सुनि सुनि स्रवननि भूख सी भजति है।

सार कियो तन्त्री सुकुमार परतंत्री ऐन,
बिना तार तंत्री जीभ जंत्री सो बजति है।

( १० )

हाँ रहै कमल कमलाकर कमलमुखी,
फूलनि में फूलि कै सुबासै मिलि जाति है।
चित्रनि मे चित्र तें विचित्र होति चित्रिनी,
अनूप चित्रसारी के सरूप हिलि जाति है॥
दीपनि समीप दीपसिखा हूँ न पैये 'देव',
चन्द्रमुखी चाँदनी महल मिलि जाति है।
सीस हू न दीसै सीसमन्दिर में सुन्दरि,
प्रकासि प्रतिबिम्बनि प्रभा में मिलि जाति है॥

( १२ )

कोमल बानि बड़ेन की कानि, हरे मुसकानि सनेह सनी की
सील सलोनि सचिन्त चितौनि, चितै ललचौनि सुभाइ बनी की।
सेज पै सौति करेजिन साल, मनोज के ओज मजेज मनी की
'देवजू' आपन जोबन रूप, धरोहरि सी धन राखै धनी की।

( १३ )

पाइ धरै कर दाबि हियो, उर देवर के पग नेवर दावै
देखि रहै ननदै मन दै, अरु सासुहि हेरि उसास न आवै।
प्रान बसै प्रतिप्रान के प्राननि, भूपन भोजन पान न भावै
देवजू दर्पन है चित निर्मल, प्रीतम को प्रतिबिम्ब दिखावै।

( १४ )

डोरी फिरैं फिरकी सी दुहूँ दिसि, 'देव' दुहूँ गुन बाँधि कै ऐंची
लोक की लीक इतै न लघौ, उत नेह नये वा खये गहि खैंची।
लाज ज्यों बाज चिरी झपटी, कपटी कुल के उर अन्तर कैंची
या तन तेज न तेहो जुदो, पर रे मन तैं अनतैं कहुँ बैंची।

( १५ )

आजु मिले बहुतैं दिन भावतै, मेटत भेट कछू मुख भाख्यो
ये भुज भूपन सो भुज बाँधि, भुजा भरि कै अधरारस चाख्यो।
दीजिये मोहि ओढ़ाइ जरी पर, कीजिये जू जिय जो अभिलाख्यो
'देव' हमैं तुम्हैं अन्तर पारत, हार उतारि इतै धरि राख्यो।

( १६ )

चम्पक-पात से गात सरोरि, करोरिक भाइ सुभाइ सँचैगन ।
सो निसि भेटि भट्ट भरि अंक, मयंक से आनन ओठ अँचैयन ॥
'देव' कहै बिन बात चले, नवनील सरोज से नैन नचैयन ।
जानति हौ भुज मूल उघाइ, दुकूल लचाइ ललै ललचैयन ॥

( १७ )

काम की कुमारी सी परम सुकुमारी यह,
जाकी है कुमारी महाभाग या जनक के ।
सलज सुसील सीलताई की सलाका सैल-
सुता ते सलोनी बैन बीना के भनक के ॥
एधी अबला तें वनदेवी ऐसी देखी 'देव',
देवी तें सगन सुन गनैं गनक के ॥
फनक धनक नन ननक ननक नन,
झनक झनक कर कंकन कनक के ।

( २५ )

न्योते गई वृषभानु-सुता, ललिता के जहाँ पति प्रीति पढ़ी है।
भीति में प्रीति में देखि लिखे, नवला के हिये नवलाज बढ़ी है॥
आँखिनि भीजी सी अंग पसीजी सी, छोभनि छीजी सी भौंह मढ़ी है।
चौंकी चकी ससकी नसकी, चितै मित्त की मूरति चित्त चढ़ी है॥

( २६ )

हौं सपने गई देखन को, कहूँ नाचत नन्द जसोमति को नट।
वा मुसकाइ कै भाव बताइ कै, मेरोई खैंचि खरो पकरो पट॥
तौ लगि गाइ बगाइ उठी, कहि 'देव' बधूनि मथ्यौ दधि को मट।
जागि परी तौ न कान्ह कहूं, न कदंब न कुंज न कालिंदि को तट॥

( २७ )

धाइ कै अंक में सोई निसंक ह्वै, पंकज सी अँखियानि झकाझकी।
त्यों सपने में मिले अपने पिय, प्रेमपने छवि ही की छकाछकी॥
ठाढ़े ह्वै ठाढ़े भरी भुज गाढ़े, सुबाढ़ी दुहूँ के हिये में सकामकी।
'देव' जगी रतियाऊ गई, न तिया के गई छतिया की धकाधकी॥

( २८ )

खोरि में खेलन आवतीयैं, न तौ आलिनि के मत मैं परती क्यों।
'देव' गोपालहिं देखतीयैं, न तौ या बिरहानल मैं जरती क्यों॥
बापुरी मंजु रसाल की बालि, सुभालि सी ह्वै उर मैं अरती क्यों।
कोमल कूकि कै कैलिया कूर, करेजनि की किरचैं करती क्यों॥

( २९ )

राधिका कान्ह को ध्यान धरैं, तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावैं।
त्यौं अँसुवा बरसैं बरसाने को, पाती लिखैं लिखि राधिकै ध्यावैं॥
राधे ह्वै जारत ही छिन में वह, प्रेम की पाती लै छाती लगावैं।
आपु में आपुनही उरझैं, सुरझैं बिरुझैं समुझैं समुझावैं॥

( ३० )

ना छिन टरत टारे आँखि न लगत पल,
आँखिनि लगे री स्याम सुन्दर सलोने से।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस,
भरि भरि रूप लेत लोचन अदोने से॥
ए री कान्ह को ढूँढ़ौ घर ही घर कहूनि री,
कैसे बन कुंज 'देव' देखि बन भौन में।
राधे री मदन पैठी हरनी ह्वै कान्ह कान्ह,
हा हा करि कान्ह पै कहाँ हैं कौने से॥

( ३१ )

जे दिन देखे गये बिन री, तिनको पछिताय कहाँ लगि कीजै।
'देव' जू देखि जिन्हैं री दुखी भई, या दिन की दुख काहि कहीजै।
देखत देखत देखन ही रही, सामनो देह न देखन दीजै।
देखे बिना दिनमान नहीं, कबौं देह को देखत हूँ न पतीजै॥

( ३२ )

आँखिनि में पुतरी ह्वै रहै, हियरा में हरा ह्वै सबै सुख लूटै।
अंगनि संग बसै अंगराग ह्वै, जीव ते जीवनमूरि न छूटै॥

'देव' जू प्यारे के न्यारे न री गुन मो मन मानिक ते नहिं टूटै।
और तिया सुतौ तो बतिया करै मो छतिया ते छनौ जब छूटै॥

( ३३ )

रूप के मन्दिर साँवरो सुन्दर चाल चलै गुन गर्ब गहीली।
जोवन के वनमाली हँसै अलसानी हँसै अँखिया उनमीली॥
'देव' सुनै छवि सीम धुनै अबलाजन जे अब लाज लजीली।
रैहै क्यों ऊजरी गोकुल में ब्रजगूजरी गोकुल की गरबीली॥

( ३४ )

ताप चढ़ै ज्यों चढ़ावत चन्द न राखति चाँदनी चैन रिते कै।
फूल निहारत सूल उठै री फुलेल भगे खुलि खेल बिते कै॥
'देव' दुरे कब लौं रहिये जू अनोखे नये यहि नेह निते कै।
आँखिनि ओट ही राखि भटू चित चोट सी लागति चंद चिते कै॥

( ३५ )

भेष भये विष भावै न भूषन भूख न भोजन की कछु ईछी।
मीचु की साध न सोंधे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी॥
चन्दन तो चितयो नहिं जात चुभी चित माहिं चितौनि तिरीछी।
फूल ज्यों सूल सिला सम सेज, बिछौननि बीच बिछी मनो बीछी॥

( ३६ )

जीभ कुजानि न नेकु लजाति, गनै कुल-कानि न बात बयौ करै।
'देव' हिये नव नेह लगाय, बिदेह की आँचनि देह दयौ करै॥
कौन अज्यानु न जानत ज्यानु, सुजान अजान के ध्यान रह्यौ करै।
काहे को मेरो कहावतु मेरो जू, पै मन मेरो न मेरो कह्यौ करै॥

( ३७ )

बंसीधर बनी बंसी बंस तेरे बंस ही की
    बंसीबट तें ही छबि छोह छहिराई है।
मेरे घोर सोर मोरचन्द्रिका सदै सें,
    चकोर बृजचन्द चार दीठि ठहराई है॥
'देव' कुल कानि तानि पल्लवलतानि पूरे,
    बावरी न बानि नहीं कैसो [illegible] है।
बिमल बिसाल गुन गूँदि के गोपाल गरे,
    मालती पुहुप माल तैं ही पहिराई है॥

( ३८ )

पीरे पत्रा [illegible] ज्यों की त्यों [illegible],
    ठाढ़ी बाईं बाईं बनी फूलनि के हार हैं।
दाहिनें भौंर और भौंर [illegible] लिये,
    मानहु लपेटे पट मोहन के भार भारे॥
जिन के [illegible] 'देव',
    तिन के [illegible] है।
[illegible]
    [illegible] हार है॥

( ३९ )

[illegible]।
[illegible]॥

'देव' घरी पल जाति जुरी, अँसुआन के नीर उसास समीरन।
आह न जाति अहीर अहे तुमै, कान्ह कहा कहौं काहू की पीरन॥

( ४० )

लाल विदेश वियोगनि बाल, वियोग की आगि जई झुरि झूरी।
पान सों पानी सों प्रेम कहानी सों, प्रान ज्यैां प्राननि यों मत हूरी॥
'देवजू' आजु ही ऐबे कि औधि, सु बीतति देखि बिसेखि बिसूरी।
हाथ उठायो उड़ाइबे को, उड़ि काग गरे परी चारिक चूरी॥

( ४१ )

बालम बिरह जिन जान्यौ न जनम भरि,
बरि बरि उठै ज्यौं ज्यौं बरसै बरफराति।
बीजन डोलावत सखीजन सुसीतहूँ मैं,
सौति के सराप तन तापनि तरफराति॥
'देव' कहै सासनि ही अँसुवा सुखात मुख,
निकसै न बात ऐसी ससकी सरफराति।
लोटि लोटि परति करौंट दुख बाढ़ी लै लै,
सूखे जल सफरी ज्यौं सेज पर फरफराति॥

( ४२ )

रच्यौ कच गोंफ सुगंध-पगा, धरि काक-पखा सुख रासि अराल।
धरी मुरली अधराधर लै, सु रली मुरलीन तें 'देव' रसाल॥
पीतम्बर काछनी पीतपटी करि, बालक भेष बनावति बाल।
उरोजन ओज निवारिबे को, उर पैन्ही सरोजनि की बनमाल॥

( ४३ )

धरे कुच पै कुच अंक पै अंक, परे परजंक मैं बालम बाल।
उसाँस लै ऊँची कियो छल छैल, सवारी लिया कोई रूप रसाल॥
बधू सिर लोटि लियो भरि नैन, करोटन देत दियो ततकाल।
चढ़े कुच कंचन सैल भयो, यही 'देव' नदी भई मोतिन की माल॥

( ४४ )

'देव' पुरैनि के पातनि पान सों, है जुग चक्र बिछाल गहे से।
पीत के पंगुल मैं पहिकै, करनाइन पायल है निबहे सों॥
मोतिन के मंजु दली कदली, लटि फेटनि गुंजनि पुंज गहे सी।
हेरी निहार रहे री कहूँ, कुच गात्र बाँधे है आजु अहे सी॥

( ४५ )

नागिनि से पुतरी है रहे, हिय मैं छबि है गई सून सहै।
भागनि संग बसै भौरान है, जीव मे जीवन भूलि न रूठे॥
'देव' जू प्यारे के न्यारे भये, तुम को मन मानिक मोसे रूठे।
और लिया को गों सों दगिनी रहे, को दुखिया में दिनौ जब छूटे॥

( ४६ )

( ४७ )

पीक भरी पलकैं झलकैं अलकैं जु गड़ी, सु लसैं भुज खोज की।
छाइ रही छबि छैल की छाती मैं, छाप बनी कहुँ ओछे उरोज की॥
ताहि चितौति बड़ी अँखियानि ते,तीखी चितौनि चली अति ओज की।
बालम ओर बिलोकि कै बाल, दई हनि खैंचि सनाल सरोज की॥

( ४८ )

कंचनबेलि सी नौल बधू, जमुना-जल केलि सहेलिनि आनी।
रोमवली अवली कहि 'देव' सु गोरे से गात नहात सुहानी॥
कान्ह अचानक बोलि उठे, उर बाल के ब्यालबधू लपटानी।
धाइ के धाइ गही ससवाइ, दुहूँ कर झारत अंग अपानी॥

( ४९ )

सेज सँवारि सुधारि सबै अँग, आँगन के मग मैं पग रोपै।
चन्द की ओरि चितौनि गई, निसि नाह की चाह बड़ी चित चोपै॥
प्रातहि प्रीतम आये कहूँ, बसि 'देव' कह्यो न परै छबि मोपै।
प्यारी के पीक भरे अधरान, उठो मनो कंपत कोप की कोपै॥

( ५० )

'देवजू' देखि हँसौ चित चोरी, बसौ मसिवाइ सोहागिनि ह्वै क्यों।
फूलनि सों कत फूलनि हौ, मुसकानि बड़ी बड़भागिनि ह्वै क्यों॥
भौंह मरोरि नचौंहि रही, सुचि ज्ञान गह्यो अनुरागिनि ह्वै क्यों।
प्रान उछाह सी पैठनी सी, हिय बैठनी बौर बिरागिनि ह्वै क्यों॥

---

# रसविलास

( [illegible] )

जोबन के रंग भरी, ईंगुर से अंगनि पै,
ऐड़िन लौं आँगी छाजै छबिन की भीर की;
उझके उरोजनि [illegible] [illegible] झीनी,
झिलमिली ओढ़नी किनारीदार चीर की ॥
गुलगुले, गोरे, गोल, कोमल कपोल;
सुधाबिंदु बोल, [illegible], [illegible] [illegible];
'देव' [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] बेस,
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥

( २ )

'देव' [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

आछे उरोज, हरा घुँघुचीन के, हाँकति हाँ कहि बैल निहारी।
गातन ही दिगराय बटोहिन, बातन ही बनिजै बनिजारी॥

( ४ )

तीनहूँ लोक नचावति ऊक मैं, मंत्र के सूत अभूत गती है।
आपु महा गुनवन्त गुसाइँनि, पाँइन पूजत प्रानपती है॥
पैनी चितौनि चलावति चेटक, की न कियो बस जोगि-जती है।
कामरू-कामिनि काम-कला, जगमोहन भामिन भानमती है॥

( ५ )

नैनन के गुन छीनि छुरा करि, छोर तें ऐंचि सनेह रचावै।
'देव' दुवौ अँगुरी कर पोइ, धरै उरझाइ कै रंग मचावै॥
सोहनि सी मनु पोहति मोतिन, जोहति सी छवि भौंहिं चलावै।
चंचल नैननि सैननि सों, पटवा की वहू नटवा सी नचावै॥

( ६ )

अंतर पैठि रहैं पट के कवि, 'देव' निरंतर ना उर आनै।
देनि मिलाइ घने अपने गुन, तार सुई किधौं देती सुजानै॥
नाहिं लिये कर मैं घर मैं, हिय जाको सिये मरमैं सु बखानै;
कीन्ही करेजन की दरजैं, दरजी की वहू बरजी नहिं मानै॥

( ७ )

माखनु सो तनु दूध सो जोबनु, है दधि तें अधिकौ उर ईठी।
जा छवि आगे छपाकर छाछ, समेत सुधा बसुधा सब सीठी॥
नैनन नेह चुवै कहि 'देव', बुझावत बैन वियोग अगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहै, कहौ क्यों न लगै मनमोहनै मीठी॥

( ८ )

आप पिवै अरु औरनि प्यावति, लाज के नूत ज्यौं तू मति डोलै ।
जोबन जेब जकी सी फलाकि, छकी मद सौं झुकि झूमति डोलै ॥
गावति रीझि रिझावति त्यौं, मनभावनि सौं सुख सूरति डोलै ।
काम के बान हनौ हिय मैं, पर बाहर घाइल घूमति डोलै ॥

( ९ )

पूरन सरद-ससि-मण्डल बिसद जोति,
मण्डल बितान मैं अनन्द सुख साहिनी ।
अमल अमोल मनि रतननि रच्यो मठ,
सुन्दर सुमन्दिर अनन्द सुख चाहिनी ॥
आठौं पहर पर आठौं आठौं सिद्धि लिये,
सेवक मैं सेवक सहाय सदा दाहिनी ।
रूप रस पगी महादेवी देव देवन की,
सिंहासन बैठी सोहैं मोहैं सिंहवाहिनी ॥

'देव' सुख साजै महाराज बृजराज आज,
राधा जू के सदन सिधारे सुनियत हैं॥

( ११ )

मंजुल अखण्ड खण्ड सातयें महल महा,
मण्डल चौबारी चण्ड मण्डल के चोटहीं।
भीतर हू लालन के जालन विसाल जोति,
बाहर जुन्हाई जगै जोतिन के जोटहीं॥
बरनन बानी चौंर ढारत भवानी कर,
जोरें रमा रानी ठाढ़ी रमन के ओटहीं।
'देव' दिगपालन की देवी सुखदाइनि तें,
राधा ठकुराइनि के पायन पलोटहीं॥

( १२ )

राधे कह्यौ है कि तैं छलियौ, ब्रजनाथ कितै अपराध किये मैं।
कानन तान न भूलत वा छिन, आँखिन रूप अनूप पिये मैं॥
आपने ओछे हिये मैं दुराउ, दयानिधि 'देव' समाय लिये मैं;
तेही स्वभाव बसी न कहूँ, पल आप अगाध निहारे हिये मैं॥

( १३ )

भरे गुन-भार सुकुमार मनिजन्यार,
सोभा रूप सागर अपार गुन आँवरे।
नखर नग जाल लाल अँगुरी निचुर माल,
नखर नगन ये अनूप [illegible]॥

( ५३ )

धरिए न पाँय धनि जायँ गाँधे चन्द्रमुखी,
पायँ गति मन्द पै गयन्दगति लोविये।
छिति छुवत 'देव' सूनी होति झलक,
पलक छूवै ठाढ़ी हौं पलक करौं पाँवड़े ॥

( ५४ )

थोरी हौ वयस बड़ी चतुरी हौ, बड़े गुन 'देव' बड़ीयै बनाई।
सुन्दरि हौ सुघरी हौ सलोनी हौ, सील भरी रस रूप सनाई ॥
राज-बधू बलि राजकुमारि, अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नैनक नेह के नाह बिना, चतुराई हू ऊँचे सबै चिकनाई ॥

( ५५ )

सोंधी सुधा सुंदर सी सुन्दर की देखि सिखीं,
नाचे भरि चाहें रूप लोचनि भरत हैं।
पीरी सब मानति निकुंज नव निरखि जोर,
पदन पाइन छिपमनि रचौ धरनि हैं ॥

ज्यों ज्यों रँगै पटरंग निचोरत, त्यों निचुरै अँग अङ्ग निकाई।
दै छबि छापें करै मन छाप सु छीपनि बाल छिपै न छिपाई॥

( १७ )

राधे कही है कि तैं छमियौ, ब्रजनाथ किते अपराध किये मैं।
कानन तान न भूलत ना खिन, आँखिन रूप अनूप पिये मैं॥
आपने ओछे हिये में दुराइ, दयानिधि देव बसाय लिये मैं।
हौं ही असाध बसी न कहूँ, पल आध अगाध तिहारे हिये मैं॥

( १८ )

मीठी महामृदु बोल कहै, लघु बोल कहै मुसकाइ सुभाइनि।
'देव' भुलाइ बटोहिनि बाट, बुलावति चोरि लिये चित चाइनि॥
रूप अनूप भरी नख तें सिख, सूक्षम सुधार सखी की रसाइनि।
हाट के ऊपर हाटक बेलि सी, बेचती है हलवा हलवाइनि॥

( १९ )

चन्द्रमुखी रुचि मन्द हँसै मुख, मोतिनि को गहि खोल्यो हवा सौं।
'देव' सुभा भरे पैंठ उठे कुच, भेटि अघान सखी सपना सौं॥
रूप-उभार कुँभार की आँउ के, जोबन कौन बनायो नवा सौं।
काम के चक्र चढ़ायो न को नट, बाकौ न कीनो अचाम अँवा सौं॥

( २० )

भर भर डोलत सुनत नर मोहिये सौं,
ऊजरी छिन सब सुख सुरवैनियाँ।
जावक है लिख दाम-दावक जगावै, 'देव'
हिय को हरत गो करत कर नैनियाँ॥

प्रेमी अनुरागिन को हियरो रिझावैं,

झमकावैं मुरकावैं बिलकावैं नैन बैनियाँ ।

पैनी बुधि वै री पिकबैनी सी नवैनी थिरैं,

पैनी चितवनि की चपल-नैनी नैनियाँ ॥

( २१ )

घाट पर ठाढ़ी बाट पावन पटोरिन की,

पेटक सी डीठि मन फारी न फरनि हैं ।

लटकि पटकि पटु फिरी फटि सटकति,

'देव' भुज-मूलनि में फूल से झरनि हैं ॥

ओढ़न की ऐंठ पाछिलानि सी उठौंहैं कुच,

ओठनि अमेठि पट ऐंठि कै धरनि हैं ।

पोंछिनि उतारी घर धोवनि धरा तौ धरि,

नूपौ-नुन बासन न फूलन घरनि हैं ॥

ओरइ मांझ तें सूर उदै लगि, ओरई सांझ लौं सूर उदौ है।
रूप की ओप अनूप भरी, पल आलि सी बाढ़त कालिह परी है॥

( २४ )

पीछे तिरीछे कटाछनि सों, इत वै चितवैं री लला ललचौहैं।
चौगुनी चैन चवाइनि के चित, चाह चढ़े हैं चवाइ मचौहैं॥
जोबन आयौ न पाप लग्यौ, कवि 'देव' रहैं गुरु लोग रिसौंहैं।
जो मैं लजैये औ जैये जितैं, तितैं पैये कलङ्क चितैये जो सौंहैं॥

( २५ )

कुंदन से अंग नव जोबन सुरंग उठे,
उरज उतंग धन्य ध्यौ जु परसतु है।
सोहनि किनारी वारी तन सुख सारी 'देव',
सीस सीसफूल अधखुल्यौ दरसतु है॥
मोतिया जराव जरे मोतिनि सों नीकी नथ,
ललन नवैननि मैं रूप सरसतु है।
गोरी गजगौनी लौनी नवल [illegible] नेरे,
भाग भरे मुख पै सोहाग बरसत है॥

( २६ )

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

( २७ )

फटिकसिलानि सौं सुधार्यौ सुधा-मन्दिर,
उदधि दधि कौ सो उफनाय उमगै अमन्द ।
बाहर तें भीतर लौं भीति न दिखाई देत,
छीर के से फेन फैली चाँदनी फरसबन्द ॥
तारा सी तरुनि तामें 'देव' जगमग होत,
मोतिन की जोति मिल्यौ मल्लिका कौ मकरन्द ।
आरसी से अम्बर मैं आभा सी उजारी ठाढ़ी,
प्यारी राधिका कौ प्रतिबिम्ब सौ लगत चन्द ॥

( २८ )

गोरे मुख गोल हँसे हँसनि कपोल छबि,
लोचन विलोल लाल लौनी लौनी लाज पर ;
सोभा लागी लाज लखिये जो 'कवि देव' लखि,
सोभा के उदत रूप सोभा के समाज पर ॥
दाहने की माँग पर दामिन दिखाती जगमगैं,
जरतारी साँची झालरि के साज पर ।
सोंधी सुठि कोरन चमंकि चहुँ ओरन ते,
कोरन कर्दनि की मानो किनार पर ॥

( २९ )

सारद के चन्द सी, इन्दु सी [illegible] 'देव',
सुन्दर बदन चन्द्रिका सी [illegible] कोर है ।

सौंधौ सुधा बिन्दु मकरन्द सी मुकतमाल,
लिपत मनोज तन मञ्जु री सरीर है॥
सील भरी सलज सलौनी मन्द मुसकानि,
राजै राजहंस-गति गुननि गहीर है।
घेरी चहुँ ओरन ते मोरन की भीर भारी,
मोरन की भीर मै चकोरन की भीर है॥

( ३० )

सील भरी बोलत सुसील बानी सब ही सौं,
'देव' गुरजननि की लाज सौं लची रही।
कोमल कपोल पर दीसै हरदी सी दुति,
चूँनी सी सकुच मुसुकानि मैं मची रही॥
लालन की लाली अँखियान मैं दिखाई देत,
अन्तर निरन्तर ही प्रेम सौं पची रही।
कुँवरि किसोरी मुख मोरी करै सखियन सौं,
चोराचोरी चित गति रोरी सी रची रही॥

( ३१ )

पंकज से नैन बैन मधुर पियूष जैसे,
अधरनि धराधर सुधा सरवत की।
'देव' कोई वाके जोग भोग वै अखण्ड सुख,
भौंहनि प्रकासी जोति कासी करवत की॥
सील की सुभाइनि कहूँ न काहू कबहूँ कि,
जबहूँ की तबहूँ करत गरवत्त की।

इन्दिरा सरूप इन्दुबदनी अनूप रूप,

जोबन उँजारी पिय प्यारी परदन की ॥

( ३८ )

सखिन के सोच गुरु-सोच मृगलोचनि,

रिसानी पिय सों जु उन नैक हँसि छुयो गात ।

सहज सुभाइ मुसकाइ उठि गये हाँ,

सिसकि सिसकि निसि खोयो पायो परभात ॥

कौन जानै बीर बिनु बिरही बिरह-बिथा,

हाय हाय करै पछताय न कछू सुहात ।

बड़े बड़े नैननि तें आँसू भरि भरि 'देव',

गोरो मुख भोरो भोरो ओरो सो बिलानो जात ॥

( ३९ )

सूझत न मान [illegible] मानी मनभावन [illegible],

सोहै सब सुंदर [illegible] है [illegible] है ।

[illegible] हुती [illegible] की [illegible],

[illegible] सुरस [illegible] [illegible] [illegible] है ॥

'देव' कहै, [illegible] मैं [illegible],

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ।

[illegible],

[illegible] अधर [illegible] [illegible] [illegible] है ॥

( ३४ )

खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुंजन अलिपुंजन की 'देव' हिये हरि जाति।
सीर नद नीर तरु तीरनि गहीर छाँह,
सोवैं परे पथिक पुकारैं पिक करि जाति॥
ऐसे मैं किसोरी भोरी कोरी कुम्हिलानो मुख,
पंकज सों पाय धरा धीरज सौ धरि जाति।
सोहै धाम स्याम मग हेरति हथेरी ओट,
ऊँचे धाम धाम चढ़ि आवत उतरि जाति॥

( ३५ )

जानि पर्यो जोवन जनायो है मनोज जुर,
जगमगी जोति अङ्ग बाढ़ति नितै नितै।
हरै हँसि हरि हरि लियौ हरि जू कौ हियौ,
हेरति हिरननैनी हितू सौं हितै हितै॥
सीखी दिन चारिक तें तीखी चितवनि प्यारी,
'देव' कहै भरि दृग देखति जितै जितै।
आछी उनमील नील सुभग सरोजन की,
तरल तनैनी मति तोरति तितै तितै॥

( ३६ )

सावन मास सखीन मैं सुन्दरि, मन्दिर तें निकसी बनि ज्यौं ससि।
'देव जू' देखि छके छवि छैल, रह्यो न गयो हिय हारि हियो कसि॥

हारि सबैन परौ नव ऊपर, फेरेहि भाँति रहौ मन में धनि ।
दीठि बचाइ नचाइ कै सीस, नचाइ कै नैनन चाह गई हँसि ॥

( ३५ )

आई बरसानें तें बुलाई वृषभानुसुता,
निरखि प्रभानि प्रभा भानु की अथै गई ।
चक चकवानि के चुराये चक चोटनि सों,
चौंकत चकोर चकचौंधि सी चकै गई ॥
'देव' नन्दनन्दन के नैनन अनन्द मई,
नन्दजू के मन्दिरन चन्दमई छै गई ।
कञ्जनि कलिनमई कुञ्जनि नलिन मई,
गोकुल की गलिन गलिन अलि मई ह्वै गई ॥

( ३९ )

खोरि लौं खेलन आवतिये न तौ, आलिन के मत मैं परती क्यौं।
'देव' गुपालहिं देखति ये न तौ, या बिरहानल मैं बरती क्यौं॥
वापुरी मंजुल आम की बाल, सुभाल सी ह्वै उर मैं अरती क्यौं।
कोमल बोलि कै क्वैलिया कूरि, करेजनि की किरचैं करती क्यौं॥

( ४० )

मोहन की मूरति सो मो ही मनमोहनी सु,
मोहि महामोह कोह मो हिय मढ़ाइयतु।
भौंर भौंर भीतर सरोज फरकत ऐसी,
अधखुली अँखियान उपमा मढ़ाइयतु॥
आलिन की आन उर आनी तन आनी आन,
करत न कान ही सयान ही पढ़ाइयतु॥
लोनौ मुखमण्डल पै पंढल प्रकास 'देव'
जैसे चन्दमण्डल पै चन्दन चढ़ाइयतु॥

( ४१ )

वौर्‌यौ वंस विरद मैं वौरी भई वरजत,
मेरे वार वार वीर कोऊ पास वैठो जनि।
सिगरी सयानी तुम विगरी अकेली हैं हीं,
गोहन मैं छाड़्यौ मोसौं भौंहनि अमैठो जनि॥
कुलटा कलङ्किनी हौं कायर कुमति कूर,
काहू के न काम की निकाम ऐसौ ऐंठौ जनि।

'देव' तहाँ बैठियतु जहाँ बुद्धि बढ़ै, हौं तौ,
बैठो हौं बिकल, कोऊ बोलि मिलि बैठो जिनि ॥

( ४२ )

आक बाक बकति बिथा मैं बूड़ि बूड़ि जात,
पी की सुधि आवैं जी की सुधि खोइ खोइ देति ।
कोह भरी कूहुकि बिमोह भरी मोहि मोहि,
छोह भरी छिति पै छली सी लोट लोट देति ॥
बड़ी बड़ी बार लगि बड़ी बड़ी आँखिन तें,
बड़े बड़े आँसुआ हिये मैं मोइ मोइ देति ।
बाल बिन बालम बिकल बैठी बार बार,
बपु मैं बिषम बिष बीज बोइ बोइ देति ॥

( ४३ )

जूँ ही बिरहाइ कै नवीनि मधुराई छोनि,
'देव' स्याम सुन्दर के गौरें मधुरानी ज्यौं ।
बिपद बिनदि बीचि बैठीन सुरन गोगि,
बिरहै पी बेदना बिरह बिलखानी ज्यौं ॥
लगनी चौंनि स्याम आनन मैं लागी न,
अकुलाई जामिनि जगन मग लागी ज्यौं ।
[illegible] बौंरिबा सी [illegible],
[illegible] ज्यौं ॥

( ४४ )

वीच मरीचनु के मृग लौं, अब धावै न रे सुन काहू नरिन्द के।
ओस की आस बुझै नहिं प्यास, विसास डसै जिनि काल फनिन्द के॥
भूलै न 'देव' निहारि असारनि, प्यास निसारत तार के विन्द के।
इन्दु सौं आनन तू जु चितैं, अरविन्द से पायन पूजि गुविन्द के॥

---

# प्रेम-चन्द्रिका

( १ )

आपुस में रस में रहसैं, बहसैं बनि राधिका कुंज बिहारी।
स्यामा सराहत स्याम कि पागहि, स्याम सराहत स्यामा कि सारी॥
एकहि दर्पन देखि कहैं तिय, नीके लगौ पिय प्यौ कहैं प्यारी।
'देव जू' बालम बाल को बादु, बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी॥

( २ )

धार मैं धाइ धँसी निरधार ह्वै, जाय फँसी उकसी न उधेरी।
री अँगराइ गिरी गहिरी गहि, फेरि फिरी न घिरी नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपनो बसु ना, रस लालच लाल चितै भईं चेरी।
बेग ही बूड़ि गईं पँखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥

( ३ )

अपनो दुख औरन को उपहासु, सबै कवि 'देव' जताइए तौ।
घनस्यामहिं नेकहु एक घरी को इहाँ लगि जो करि पाइए तौ॥

( ५ )

रावरो रूप रह्यो भरि वैनन, बैननि के रस सों स्रुति सानो।
गात मैं देखत गात तुम्हारेई, वात तुम्हारिये वात बखानो॥
ऊधो हहा हरि सो कहियो, तुम हौ न इहाँ यह हौ नहिं मानो।
या तन से बिछुरे तो कहा, मन ते अनते जु बसौ तब जानो॥

( ६ )

जीभ कुजाति न नेकु लजाति, गनै कुल-जाति न बात वह्यो करै।
'देव' नयो हिय नेह लगाय, विदेह कि आँचन देह दह्यो करै॥
जीव अजान न जानत जान, जो मैन अयान के ध्यान रह्यो करै।
काहे को मेरो कहावत मेरो, जु पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै॥

( ७ )

को कुल या व्रज गोकुल दो, कुल दीपसिखा सी ससी सी नहीं भरि।
त्यों न तिन्हें हरि हेरत री, रँग राती न जो अँगराती गरे परि॥
जो नवला नव इंदुकला, ज्यों लची परै प्रेम रची पिय सों लरि।
भेटत देखि बिसेखि हियें, व्रज भूभुज 'देव' दुहूँ भुज सो भरि॥

( ८ )

पीछे तिरीछे चितौनि सोई, इत वै चितवै री लला ललचौहैं।
चौगुनो चाउ चवाइन के, चित चाव चढ़ी है चवाउ मचौहैं॥
जोबनु आयो न पापु लग्यो, कवि 'देव' रहैं गुरु लोग रिसौहैं।
जी में लजैये जु जैये कहूँ, तित पैये कलंक चितैये जु सौहैं॥

( ९ )

प्रेम कहानिन सों पढ़ि लै, हरि कानन आनि समीप किये मैं।
चित्र चरित्र न मित्र भये, सपने सँग सोहि निसाप लिये मैं॥
'देव' जू दूरि ते दौरि दुराइ कै प्रेम सिखाइ हिराइ हिये मैं।
वारिज से बिकसे मुख पै, निकसे दृग है निकसे न हिये मैं॥

( १० )

पावै घरी उमहे सब देखि को, हौं न तुम्हैं पठवौं बलिहारी।
मेरो तो जीवन 'देव' यही धनु, या ब्रज पाइ मैं भीख तिहारी॥
जानै न रीति अथाइन की, नित गाइन मैं बनभूमि निहारी।
याहि कोऊ पहिचानै कहा, कछु जानै कहा मेरो कुंजबिहारी॥

( ११ )

'देव' न देखति हौं दुति दूसरी, देखे हैं जा दिन ते ब्रज भूप मैं।
पूरि रही री वही धुनि कानन, आन न आनन ओप अनूप मैं॥
ये अँखियाँ सखियाँ न हमारियै, जाय मिली जल बूँद ज्यौं कूप मैं।
कौंहि उपाय न पाइये फेरि, समाइ गईं रँगराइ के रूप मैं॥

( १२ )

[illegible]
'देव' [illegible] हिय मैं [illegible]
[illegible]
[illegible]

( १३ )

लाल बुलाई है, को हैं वे लाल, न जानती हौ तौ सुखी रहिबो करि ।
री सुख काहे को देखे बिना, दिखसाधन ही जियरा न परयौ जरि ॥
'देव' तो जानि अजान क्यों होति, इती सुन आँसुन नैन लये भरि ।
साँची बुलाई, बुलावन आई, हहा कहु मोहिं कहा कहिहैं हरि ॥

( १४ )

साँसन ही सों समीर गयो, अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।
पौन गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ॥
'देव' जियै मिलिबेई की आस, कै आसहू पास अकास रह्यो भरि ।
जा दिन तें मुख फेरि हरे हँसि, हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि ॥

( १५ )

जागत जागत खीन भई, अब लागत संग सखीन को भारो ।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो बिसे बीस बिसारो ॥
प्यौ सुधि दौस गँवावति 'देवजू', जामिनि जाम मनौ जुग चारो ।
नीरजनैनी निहारिये नैननि, धीरज राखत ध्यान तिहारो ॥

( १६ )

एकै अभिलाष लाख लाख भाँति लेखियत,
देखियत दूसरो न 'देव' चराचर में ।
जासों मनु राचै तासों तनु मनु राचै रुचि,
भरि कै उघरि जाँचै साँचै करि कर में ॥
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे की सती लौं बैठि सर में ।

प्रेम सों कहत कोई ठाकुर न ऐंठो सुनि,

पैठो गहि गहरे तौ पैठो प्रेम घर मैं ॥

( १७ )

कैसी कुलवधू कुल कैसो कुलवधू कौन,

तू है यह कौन पूछै काहू कुलटाहि सों ।

कहा भयो तोहि कहा चाहि तोहि तोहि कोऊ,

कीनो और काहै और कहा न सो काहि सों ।

जानि लीजै जाति कैसी जाति को है जानि पहौ,

तोसों हौं बिलानि मेरी तोसों न बिलाहि सों ।

लाज जाउ, लाज जाउ, लाज जाहिवे हौं कहौ,

पंच हँसिहैं री, हौं तो पंचन ते बाहिरो ॥

( १८ )

बोलत सुभाय बिधु [illegible] की [illegible],

नाहीं सीखी लोक [illegible] [illegible] संग मैं ।

[illegible]

[illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ।

[illegible]

[illegible]

( १९ )

बारिधि बिरह बड़ी बारिधि की बड़वागि,
बूड़े बड़े बड़े जहाँ पारे प्रेम पुल ते।
गरुओ दरव 'देव' जोबन गरव गिरि,
पर्‌यो गुन टूटि टूटि बुध नाउ डुलते॥
मेरे मन तेरी भूलि मरी हौं हिये की सूल,
कीन्ही तिन तूल, तूल अति ही अतुल ते।
भावते भोड़ी करी, मानिनी ते मोड़ी करी,
कौड़ी करी हीरा ते, कनौड़ी करी कुल ते॥

( २० )

रीझे सुख पाऊँ औ न खीझे सुख पाऊँ मेरे,
रीझ खीझ एकै रँग राग्यो सोई रागि चुक्यो।
जस अपजस कुबड़ाई औ बड़ाई गुन,
औगुन न जान्यो, जीव जाग्यो सोई जागि चुक्यो॥
कौन काज गुरु जन बरजैं जु दुरजन,
कैसो कुल नेम प्रेम पाग्यो सोई पागि चुक्यो।
लोगन लगायो सु तौ लाग्यो अनलाग्यो 'देव',
पूरो पन लाग्यो मन लाग्यो सोई लागि चुक्यो॥

( २१ )

बिन जान्यौ बेद ते नौ बाद कै बिदित होहि,
जिन जान्यो लोक तेऊ लीक पै लरि मरो।

जिन जान्यौ तपु तीनो तापन सों तपि जिन,
पंचागिनी साध्यौ ते समाधिन पर मरे ॥
जिन जान्यौ जोग तेऊ जोगी जुग जुग जियो,
जिन जान्यौ जोति तेऊ जोति लै जरि मरे ।
हौं तो 'देव' नंद के कुमार तेरी चेरी भई,
मेरो उपहास क्यों न कोटिन करि मरे ॥

( [illegible] )

कुबिजा विसेष [illegible] जा के रहे पाप 'देव',
अन अघनाशी पथ नागो जिन गनिका ।
आरति न रावत निवारन नरक ही ते,
तारन तिलोक पद्मोदक की कनिका ॥
उनपै गुनानुवाद तुमसों सुने मैं ऊधो,
गोपिन को ऐसो मन प्रेम की लपनिका ।
कुंजन मैं हेरिहैं जु स्याम को [illegible],
हाय लै न फेरिहैं कलंकिनी के [illegible] ॥

( [illegible] )

[illegible] दियो, न लियो [illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥
'देव' [illegible],
[illegible] ।

हमरे बसन देहु, देखत हमारे कान्ह,
अजहूँ बसन देहु, ब्रज में बसन देहु ॥

( २४ )

वारै कोटि इंदु अरविंदु रसबिंदु पर,
मानै ना मलिन्द बिन्दु सम कै सुधासरो।
मलै मल्लि मालती कदम्ब कचनार चम्पा,
चँपेहू न चाहै चित चर न टिकासरो ॥
पदुमिनि तू ही पटपदु को परम पदु,
'देव' अनुकूल्यो और फूल्यो तौ कहा सरो।
रस, रिस, रास, रोस, आसरो सरन, बिसे,
बीसो बिसवास रोकि राख्यो निसि वासरो ॥

( २५ )

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेम, न,
रचा है चित और अरचा है चित्तचारी को।
छोड़यो परलोक नरलोक बर लोक कहा,
हरख न सोक न अलोक नर नारी को ॥
बाम, मीत, मेह न विचारै सुख देह हू को,
प्रीतम सनेह डरु बन न अँध्यारी को।
भूलेहू न भोग, बड़ी बिपति, बियोग बिथा,
जोगहू ते कठिन संजोग परनारी को ॥

( २६ )

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि, कुनारी हौं।
कैसो परलोक, नरलोक, वर लोकन में,
लीन्हीं मैं अलोक लोक लीकन ते न्यारी हौं॥
तन जाहि, मन जाहि, 'देव' गुरु जन जाहि,
जीव क्यों न जाहि, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दावनवारी बनवारी के मुकुट पर,
पीतपटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

( २७ )

मन्द महामोहक मधुर सुर सुनियत,
धुनियत सीस बंधी बाँसी है री बाँसी है।
गोकुल की कुलबधू को कुल सम्हारै नहीं,
दो कुल निहारैं लाज नासी है री नासी है॥
[illegible]
[illegible]
'देव' ब्रजवासी वा बिसासी की चितौनि, वह,
गाँसी है री हाँसी, वह फाँसी है री फाँसी है॥

( २८ )

'देव' [illegible]
[illegible]

दूरि दुख दुंद राखि, मुंदरा पहिरि कान,
ध्यान सुंदरानन गुरू के पग पूजिए ॥
शृंगी की टकी लगाय, भृंगी कीट कै मनु,
बिरागिन ह्वै बपु बिरहागिनि मैं भूजिए।
केली तजि राधिका अकेली, होय जोगिन तौ,
अलख जगाय हेली चेली चलि हूजिए ॥

( २९ )

नेवर के बजत कलेवर कँपत 'देव',
देवर जगै न लगे सोवत तनक ते।
ननद न छीछी त्योरी तोरति तिरीछी लखि,
बीछी कैसो विपु बगरावेगी भनक ते ॥
देखिए कठिन साथ गहौ जू हठि न हाथ,
कैसे कहाँ जाहु नाथ आये हौ बनक ते।
बस ना हमारो रंग रस न बनत, चौंकि,
रसना दसन दावै रसना भनक ते ॥

( ३० )

अंजन सों रञ्जित निरञ्जनहिं जानै कहा,
फीको लगै फूल रस चाखे हौ जु बौड़ी को।
तूरज बजाय सूर सूरज को वेधि जाय,
ताहि कहा मचद सुनावत हौ ढौड़ी को ॥
ऊधो पूरे पारखी हौ परखे बनाय 'देव',
बार ही पै बोरी पैरवैया धार ओड़ी को।

मनु मनिका दै हरि हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
  तिन्है तुम बनिज बतावत हौ पोथी को॥

( ३५ )

मोहि तुम्हैं अन्तर गनैं न गुन जन गुन,
  मेरे, हौ तुम्हारी, पै तऊ न पियरात हौ।
पूरि रहे या तन मैं, मन मैं न आवत हौ,
  पलक पूरि देखे, कहूँ काहू ना दिखात हौ॥
ऊँचे चढ़ि रोर्इं, कोई देत न दिखाई 'देव',
  गातन की ओट बैठे बातन बिलात हौ।
ऐसे निरमोही सदा मोही मैं बसत अरु,
  मोही ते निकरि फेरि मोही न मिलत हौ॥

( ३६ )

फलि फलि, फूलि फूलि, फैलि फैलि, झूलि झूलि,
  झपकि झपकि, आई कुंज चहुँ ओर ते।
हिलि मिलि हेलिन को केलिन करन गईं,
  बेलिन बिलोकि बधू ब्रज की किसोर ते।
नेह की पौरि पर ठाढ़े हैं रसिक देव,
  मोहन जू मोहि [illegible] मोहिनी के मोर ते।
सावन सनेह झूली सावन के, [illegible],
  [illegible] के [illegible], मोहन के [illegible]।

( ३३ )

अंब कुल, बकुल कदंब मल्ली मालती,
मलै जन को मींजि कै गुलाबन की गली है।
को गनै अलपतरु, जी सों कलपतरु,
ता सों विकलप क्यों अलपमति अली है॥
चित जाके जाय चढ़ि चम्पक चपायो कोन,
मोचि मुख सोचिहै सकुचि चुप चली है।
कंचन बिचारे रुचि पंचन मैं पाई 'देव',
चम्पा बरनी के गरे पर्‌यो चम्पकली है॥

( ३४ )

जौन जी मैं प्रेम, तब कीजै व्रत नेम जब,
कंज मुख भूलै, तब संजम बिसेखिए।
आस नहीं पी की, तब आस नहीं बाँधियत,
साँसन कै साँसन को मूँदि पति पेखिए॥
नख ते सिखा लौं सब स्याममई बाम भई,
बाहिरहू भीतर न दूजो देव देखिए।
जोग करि मिलै जो वियोग होय बालम जु,
ह्याँ न हरि होय तब ध्यान धर देखिए॥

( ३५ )

मोहि में छिपे हौ मोहि छुवावन न छाँडो, तापै,
छाँड भये डोलन, इतै पै मोहि छरिहौ।

मच्छ मुनि कच्छप, बराह नरसिंह पुनि,
बामन परसुराम रावन के अरि हौ ॥
'देव' बलि बुद्ध देव दानव न पावैं भेव,
को हौ जु कहौ जु जो हिये की पीर हरिहौ ।
करत पुकार प्रभु करुनानिधान आनँद,
कानि मूँद बैठे हौ कहौंधौ बाति बरिहौ ॥

( ३६ )

जोगहि सिखैहौ ऊधो जो गहिहै राम हम,
सो न भव भाग, भगवान भाग पै भरी ।
'देव' पंचभावन नचाय मोहि पंचन मैं,
पंचहू परनि पचाइन सो धरैं धुरी ॥
कुबजाहू हौंपै हाय कुब्जा करावैं कर,
गोपिका मैं कुल मैं करेर सिर लै धुरी ।
चित चोर चित न चुरावैं चित चोर मेरो,
वारौ चितचोरनि चितौर चित है चुरी ॥

( ३७ )

दार द्रुम पालन बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिंगोला सोहैं तन छबि भारी दै ।
पवन झुलावै केकी कीर बहरावैं 'देव',
कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै ।

पूरित पराग सों उतारा करै राई नोन,
कुंद कली नायिका लतान सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

— —

# सुजान-विनोद

( १ )

भारी भर्यो बिधि भाँतिनि रूप, सुढोर ढुरी कवि [illegible] ।
नीको चुनी को लिलार मैं टीको, सुटेकि लिलार [illegible] गुन [illegible] ॥
बालपनो तरुनापनो बाल को, 'देव' [illegible] ।
दोऊ जवाहिर जौहरी नैन, सुनैन पलानि तुला [illegible] ॥

( २ )

'देव' मैं सीस बसायौ सनेह सौं, भाल मृगम्मद बिंदु कै [illegible] ।
कंचुकी मैं चुपर्‍यो करि चोवा, लगाय लियो उर सौं [illegible] ।
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार कै [illegible] ।
साँवरे लाल को साँवरो रूप, मैं नैननि को कजरा करि [illegible] ॥

( ३ )

[illegible] बाँधिकै हरि के गुन [illegible] ।
[illegible] सुनकवाय [illegible] ।
'कवि देव' [illegible] ।
[illegible] ॥

( ४ )

[illegible] ।
[illegible] ॥

भेटती मोहि भटू केहि कारन, कौन किधौं छवि सों छकती हौ।
कैसी भई सो कहौ किन कैसे हू, कान्ह कहाँ हैं, कहा बकती हौ॥

( ५ )

केसरि किंसुक औ बरना, कचनारनि की रचना उर सूली।
सेवती 'देव' गुलाब मलै मिलि, मालती मल्ली मलिंदनि हूली॥
चंपक दाड़िम नूत महाउर, पाँडर डार डरावनि फूली।
या मयमंत बसंत मैं चाहत, कंत चल्यो हमही किधौं भूली॥

( ६ )

काम कलोलनि केलि करी निसि, प्रात उठी थिर ह्वै थहराय कै।
आपने चीर के धोखे बधू, पहिरो पट पीतम को फहराय कै॥
बाँधि लई कटि सों बनमाल, न किंकिन बाल लई ठहराय कै।
भावती की रस रंग कि दीपति, संग की हेरि हँसी हहराय कै॥

( ७ )

होरी को सोरु पर्‌यो ब्रज पौरि,किसोरी को चित्त बिछोहनि छीज्यो।
दौरि फिरै दुरि देखिवे को, न दुरै मनु ओज मनोज की मीज्यो॥
केसरिया चकचौंधत चीर, ज्यों केसरि बीर सरूप लसी ज्यों।
लाल के रंग में भीजि रही, सु गुलाल के रंग में चाहत भीज्यो॥

( ८ )

साँवरो सुंदर रूप बिसाल, अनूप रसाल बड़े बड़े नैन री।
या बन आवत गैयनि लै नित, 'देव' द्विजैयनि के चित चैन री॥
मैं हूँ सुनी सो कहा कहौं लाज की, बात कहूँ सखि तू कहिए न री।
वा जग बंचक देखे बिना, दुखिया अँखियान न रंचक चैन री॥

( ९ )

प्रान सों प्रानपती सों निरन्तर, अन्तर अन्तर पारत फेरी ।
'देव' कहा कहौं बाहर हूँ, घर बाहर हूँ रहैं घेरि घनेरी ॥
लाज न लागति लाज अहे, तोहि जानो मैं आजु अकाजिनि एरी ।
देखन दे हरि को भरि नैन, घरी छिन एक सखी कहि मेरी ॥

( १० )

मंजुल मंजरी पंजरी सी ह्वै, मनोज के ओज सम्हारति चीरन ।
भूख न प्यास न नींद परै, परी प्रेम अजीरन के जुर जीरन ॥
'देव' घरी पल जाति घुरी, अँसुवानि के नीर उसास समीरन ।
आह न जाति अहीर अहो तुम्हैं, कान्ह कहाँ कहौं काहू के पीरन ॥

( ११ )

'देव' जो बाहिर ही बिहरै, तो सरीर सखी सब बिरह कै दैहै ।
भीतर भौन बसै [illegible] ॥
कालिंदी जौ [illegible] ।
[illegible] ॥

( १२ )

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥

( १३ )

हौं भई दूलह, वे दुलही, उलही सुख वेलि सी केलि घनेरी।
हौं पहिरे पिय को पियरी, पहिरी उन री चुनरी चुनि मेरी॥
'देव' कहा कहौं कौन सुनै, औ कहा कहे होत कथा वहुतेरी।
जेहरि मेरी धरैं नित जे हरि, ते हरि चेरी के रंग रचे री॥

( १४ )

वारियै वैस वड़ी चतुरै हौ, वड़े गुन 'देव' वड़ीयै वनाई।
सुंदरै हौ सुघरै हौ सलोनी हौ, सील भरी रस रूप सनाई॥
राजवधू वलि राजकुमारि, अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नैसिक नाह के नेह विना, चकचूर ह्वै जैहै सवै चिकनाई॥

( १५ )

होरी में आजु भिजै रँग रोरी के, आपनो प्यो अपने वस कै लै।
यों कहि 'देव' सखी गहि गोरी को, ल्याई हैं गोकुल गाँव की गैलैं॥
लाज की गारी सुनी कवहूँ नहिं, गावत लोग लगावत छैलै।
खेलति फागु नई दुलही, दृग आँसुनि लीलि उसासनि लै लै॥

( १६ )

भोर हो भूरि भुराई भरे, अरु भाँतिन भाँतिन कै मन भाये।
भाग वड़ो वहि भावती को, जेहि भावते लै रंग-भौन वसाये॥
भेष भलोई भली विधि सों, करि भूलि परे किधौं काहू भुलाये।
लाल भले हौ भलो सुख दीनो, भली भई आजु भले वनि आये॥

( १७ )

लोग लुगाइनि होरी लगाय, मिलामिली चाह न भेटत ही बन्यो ।
'देव' जू चंदन चूर कपूर, लिलारन लै लै लपेटन ही बन्यो ॥
ये यहि औसर आये इहाँ, समुहाय हियो न समेटत ही बन्यो ।
कीनी अनाकनियो मुख मोरि, पै जोरि भुजा भटू भेटत ही बन्यो ॥

( १८ )

भूजि रही विरहातुर सो, मनो पावन जानि रसीनु लगाई ।
पारि घनो रँग केसरि को गहि, घोरि गुलाल मैं धाल रँगाई ॥
सानि लई गहिरी कहि री, इनसों उनसों सब चीन सगाई ।
ऐसे भये निरमोही महा, कहि दाव कहौं दिन होरी लगाई ॥

( १९ )

पानी पान भोजन, सुजन, गुरजन भूले,
'देव' दुरजन लोग लरत खरे परो॥
लागो कौन पाप, पल एकौ न परति कल,
दूरि गयो गेह, नयो नेह नियरे परो।
होतो जो अजान, तौ न जानतो इतीकु बिथा,
मेरे जिय जान तेरे जानिबो गरे परो॥

( २१ )

जगमगे जोबन जराऊ ताखनकान
ओठन अनूठे रस-हाँसी उमड़े परत।
कंचुकी मय कसे आवै उकसे उरोज—
बिन्दु बदन लिलार बड़े बार घुमड़े परत॥
बड़े बड़े नैन कजरारे बड़े मोती नथ,
बड़ी बरुनीन होड़ाहोड़ी हुमड़े परत।
गोरे मुख सेत सारी कंचन किनारीदार,
'देव' मन झुमका झुमक झुमड़े परत॥

( २२ )

सूझत न गात बीत आई अधरात अरु,
सोये सब गुरुजन जानि कै बगर के।
छिपि कै छबीली अभिसार को केवार खोले,
खुलि गे खजाने चारु चन्दन अगर के॥
'देव' कहै भौंर गुंज आये कुंज कुंजन ते,
पूछि पूछि पीछे परे पाहरू डगर के।

देवता की दामिनी मसाल किधौं जोति जागि,
      जगरे जगत जागे नगरे नगर के ॥

( २३ )

आवन सुन्यो मनभावन को भावती ने,
      आँखिन अनंद आँसू ढरकि ढरकि उठैं ।
'देव' दृग दोऊ दौरि जात द्वार देहरी लौं,
      केहरी सी साँसैं खरी खरकि खरकि उठैं ॥
टहलैं करति टहलैं न हाथ पाँव रंग,
      गहलैं निहारी सखी सरकि सरकि उठैं ।
सरकि सरकि सारी दरकि दरकि आँगी,
      औचक उचौंहैं कुच फरकि फरकि उठैं ॥

( २४ )

बालम बिरह जिन जान्यो न जनम भरि,
      बरि बरि उठै ज्यों ज्यों बरसै बरफ राति ।
बीजन डुलावत सखी जन त्यों सीत हू मैं,
      सौतिन सराप तन तापनि तरफराति ॥
'देव' कहै साँसनि सों अँसुवा सुखात मुख,
      निकसै न बात ऐसी सिसकी सरसराति ।
लौटि लौटि परत करौंट खटपाटी लै लै,
      सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति ॥

( २५ )

कंचन किनारीवारी सारी तास की मैं—
आसपास झूमी मोतिन की झालरि एकहरी।
सीसफूल बेना बेंदी बेसरि और बीरनि की,
हीरनि की भीर मैं हँसति छवि छहरी॥
चन्द से बदनि भानु भई वृषभानुजाई,
नयन लुनाई की उवनि की सी लहरी।
काम धाम घोड्यों पवित्तु घनस्याम मन,
क्यों सहैं समीप 'देव' दीपति दुपहरी॥

( २६ )

पीछे परवीनैं बीनैं संग की सहेली आगे,
भार डर भूषन अगर डारे छोरि छोरि।
चौंकति चकोरनि त्यों मोरैं मुख मोरनि त्यों,
भौंरनि की ओर भीरु हेरैं मुख मोरि मोरि॥
एक कर आली कर ऊपर ही धरे हरे,
हरे पग धरे 'देव' चलै चित चोरि चोरि।
दूजे हाथ साथ लै सुनावति वचन राज,
हंसन चुनावति मुकुति माल तोरि तोरि॥

( २७ )

सीतल महल मढ़ा सीतल पटीर पंक,
सीतल के सोंधे भीनि छिनि छाती छहरें।

सीतल सलिल भरे सीतल विमल कुंड,
सीतल विमल जलजंत्र धारा डारैं।
सीतल बिछौननि पै सीतल बिछाई सेज,
सीतल दुकूल पैन्हि पौढ़े हैं दुपारैं।
'देव' दोऊ सीतल आलिंगननि देत लेत,
सीतल सुगंध मंद मारुत की ढारैं॥

( २८ )

दुलही दुलह नील पाट [illegible] फबे,
उलटि फिरत गोपी गोपनि की भीर मैं।
सैनिये बसंत पाँचैं पाय कौ परसि नारैं,
रंग राँचे बीच नाचैं केसरि की नीर मैं॥
परत न कानि जानि मदन भुजानि 'देव',
धरत न धीर उर अधिक अधीर मैं।
संपदारि ढंबर मैं बूड़ि गए दोऊ कुल,
सोभा के अडंबर मैं अंबर अबीर मैं॥

( २९ )

तेरो पग्यो प्यार यहि जीव रम्यो [illegible],
दागो पाँव धरि धरि [illegible] न सो [illegible]।
ललन बिलोके 'देव' पल न लगावें नैन,
सौं पल न दीनो है [illegible]।
ऐसे निरमोही सों सनेह [illegible] ही [illegible],
[illegible]

ए रे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हे अब,
ए केवार दैके तोहि मूँदि मारौं एक बार ॥

( ३० )

ना खिन टरत टारे आँखि न लगत पल,
आँखि न लगे री स्याम सुंदर सलौन से ।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस,
भरि भरि रूप लेत लोचन अचौन से ॥
ए री कहु को हो, हौं सु को हौं कहा कहति हौं,
कैसे बन कुंज देव देखियत भौन से ।
राधे हौ सदन बैठी कहति हो कान्ह कान्ह,
हा हा कहि कान्ह वे कहाँ हैं को हैं कौन से ॥

( ३१ )

हित की हितू री नहिं तू री समुझावै आनि,
सुख दुख मुख सुखदानि को निहारनो ।
लपने कहाँ लौं बालपने की विकल बातै,
अपने जनहि सपनेहू न बिसारनो ॥
'देवजू, दरस बिनु तरसि मरथो हो पग,
परसि जियैगो मन वैरी अनमारनो ।
पतिव्रत व्रती यै उपासी प्यासी अँखियन,
प्रात उठि पीतम पियायो रूप पारनो ॥

( ३२ )

केलि के बगीचे लौं अकेली अकुलाइ आई,
नागरि नवेली बेली हेरन हुलसि परी।
कुंज पुंज तीर तहाँ गुंजत भँवर भरि,
सुखद समीर मारे नीर की लहरि परी॥
'देव' तेहि काल गूँधि ल्याई माल मालिन सो,
देखत बिरह बिष ब्याल की लहरि परी।
छोह भरी छरी सी छबीली छिति छाँह फूल,
छरी के छुवत फूल छरी सी छहरि परी॥

( ३३ )

पामरिन पाँवड़े परे हैं पुर पौरि लगि,
धाम धाम धूपनि के धूम धुनियतु है।
कस्तूरी अतरसार, चोवा रस, घनसार
दीपक हजारनि अँध्यार लुनियतु है।
मधुर मृदंग राग रंग के तरंगनि मैं,
अंग अंग गोपिन के गुन गनियतु है।
'देव' सुखसाज, महाराज ब्रजराज आजु
राधाजू के सदन सिधारे सुनियतु है॥

( ३४ )

धाई खोरि खोरि ते बधाई पिय आवन की,
सुनि सुनि दौरि दौरि [illegible] भरति है।

मोरि मोरि बदन निहारत बिहार भूमि,
घोरि घोरि आनँद घरी सी उघरति है ॥
'देव' कर जोरि जोरि वंदत सुरन गुरु-
लोगन के लोरि लोरि पाँयन परति है।
तोरि तोरि माल पूरै मोतिन की चौक,
निवछावरि को छोरि छोरि भूषन धरति है ॥

( ३५ )

छीर की सी लहरि छहरि गई छिति माँह,
जामिनी की जोति भामिनी को गनु ऐंठ्यो है।
ठौर ठौर छूटत फुहारे मनो मोतिन क,
'देव' बनु याको मनु काको न अमैठ्यो है ॥
सुधा के सरोवर सो अंबर उदित ससि,
मुदित मराल मनु पैरिबै को पैठ्यो है।
बेलि के विमल फूल फूलत समूल मनों,
गगन ते उड़ि उड़गन गन बैठ्यो है ॥

( ३६ )

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक से,
तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन।
सान धरे सार से चंदन घनसार लागे,
खेद लागे खरे मृग मेद लागे महकन ॥
फाँसी से फुलेल लागे, गाँसी से गुलाब अरु,
गाज अरगजा लागे, चोवा लागे चहकन।

अंग अंग आगि ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन अधीर लागे दरन ॥

( ३७ )

भीतर ही लालनि के आलनि बिसाल जोति,
बाहर जुन्हाई जगी जोतिन की जोटरी।
बरनति बानी चौंर ढारति भवानी कर,
जोरे रमा रानी ठाढ़ी रतन के खोटरी ॥
उज्जल अखंड खंड सातयें महल महा,
मंदिर पधारो चंदमंडल की चोटरी।
'देव' दिगपालनि की देवी सुखदाइनि वे,
राधा ठकुराइन के पाँइन पलोटरी ॥

( ३८ )

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई 'देव',
श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक सी।
छूटी अलकनि [illegible] बूँदन की,
बिना बेंदी [illegible] सोभा बिकसी।
[illegible]
[illegible]
नीबी [illegible]
[illegible]

( ३९ )

भेटि भुज भुजन समेटि उर सों जु उर,
    अधर अधर धरे अधिक अधीर की।
जोरि अंग अंग सों लचाइ गुलचाइ भाल,
    दीनी लाल बेंदी बोरि खैंचि कै अबीर की ॥
'देव' दुख भंजन लला के दृग खंजन मैं,
    अंजन की लीक पीक पलक लकीर की।
तन मन वारी बनवारी की बनक पर,
    चंद बलिहारी बलिहारी बलबीर की ॥

---

# सुखसागर-तरंग

( १ )

'देव' सबै सुखदायक संपति, संपति सो सुख दंपति जोरी।
दंपति दीपति प्रेम प्रतीति, प्रतीति की रीति सनेह निचोरी॥
प्रीति तहाँ गुण रीति विचार, विचार की बानी सुधा रस बोरी।
बानी को सार बखान्यो शृंगार, शृंगार को सार किसोर किसोरी॥

( २ )

डोही ब्रजवृंदावन कोटी में बसत सदा,
जमुना तरंग श्याम रंग अवलीन की।
'देव' दई सुंदर सघन बन बेलि द्रुम,
कुंजन में सुनियत गुंजनि अलीन की॥
बंसीबट तट नट नागर नटत मोहैं,
रास के विलास की मधुर धुनि बीन की।
भरि रही भनक बनक ताल तानन की,
तनक तनक ताहि झनक चुरीन की॥

( ३ )

[illegible]
'देव' [illegible]

रूस सकी न भरै सिसकी, सु उमा सनि ही अँसुवाँ सुख पेटरि ।
लालरि लैकै गुलाल रँगीलै, रँगीली की चूनरि गीली गई करि ॥

( ४ )

एकन बैनन ही ललचाय, लचाये हैं एकन सैनन कै कै ।
है गुलचाय लचाये लला, सु बचाये है ओठनि कै रस लैकै ॥
एकहि भेंटि दुहूँ भुज 'देव', हियो दृग अंजन रंग उन्है कै ।
चंचलनैनी दृगंचल मोरि, हँसै मुख रंचक अंचल दैकै ॥

( ५ )

खेलत फाग खिलार खरे, अनुराग भरे बड़भाग कन्हाई ।
एक ही भौन में दोउन देखिकै, 'देव' करी इक चातुरताई ॥
लाल गुलाल सो लीनी मुठी भरि, बाल के भाल की ओर चलाई ।
वा दृग मूँदि उतै चितयो, इन भेटि इतै वृषभान की जाई ॥

( ६ )

न्याननि काम हो बाम बिरानी ये, जात हिरानी ये सामुहे हेरेई ।
वीरन की सौं अहीरन पीर न, वीरन के घर आवति घेरेई ॥
औसर होरी के भौज को भेट न, भौजी को भेटन आये अबेरेई ।
देवर हो जू लड़ाइते देवर, नेवर मेरे सुनेवर मेरेई ॥

( ७ )

चाँदनी से आँगन विछैाना विछो चाँदनी से,
फैलि रही चाँदनी सुहाय 'देव' भूमि भूमि ।
तो ही विनु फीकी ये लगत चलु चन्द्रमुखी,
तेरे हो चरण चरचत मुख चूमि चूमि ॥

आली बेनु आनि कै सुनाय्यो पंदोसा गाजि,
तामें सुरदानि सो विरह गिरि घूमि घुमि।
झीनी झीनी झरें सी सुनाईं करौ बरारनि,
झिलिमिली झालरें रही हैं झुकि झूमि झूमि॥

( ८ )

छीर की सी लहरि छहरि गई छिति छोर,
जामिनि की ज्योति भामिनी को मनु पैठो है।
ठौर ठौर छूटत फुहारे मानो मोतिन के,
'देव' धन वारो गन पारो न अमैठो है॥
सुधा को सरोवर सो अम्बर उदित ससि,
मुदित मराल मनो पैरिबे को पैठो है।
ऐसो के बिमल फूल फूलन मयूख मानौं,
गगन ते उतरि सुरगन गन पैठो है॥

( १० )

खरी दुपहरी हरि भरी फरी कुंज मंजु,
गुंज अलि पुंजन की 'देव' हियौ हरि जाति।
सीरे नद नीर तरु तीरन गहरि छाँह,
सोवै परे पथिक पुकारै पिक करि जाति॥
ऐसे में किसोरी भोरी कोरी कुँभिलाने मुख,
पंकज जो पाइ धरा धीरज सो धरि जाति।
सोहै घनश्याम मग हेरति हथेरी ओट,
ऊँचे धाम वाम चढ़ि आवत उतरि जाति॥

( ११ )

सोखे सिन्धु सिन्धुर से बन्धुर ज्यौं विन्ध्य गन्ध-
मादन के बन्धु से गरज गुरवानि के।
झमकारे झूमत गगन घने घूमत,
पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरवानि के॥
नदी नद सागर डगर मिली गये 'देव',
डगर न सूझत नगर पुरवानि के।
भारे जल धरणि अँध्यारे धरणी धरणि,
धाराधर धावत धुमारे धुरवानि के॥

( १२ )

आजु गई हुती कुंजन लौं, बरसे उत बूँद घने घन घोरत।
'देव' कहै हरि भीजत देखि, अचानक आइ गये चित चोरत॥

पोटि भटू तट ओट कटी कै, लपेटि पटी सों कटी पटु [illegible] ।
चौगुनो रंग चढ़ो चित मैं, चुनरी के चुचात [illegible] के निचोरन ॥

( १३ )

आली झुलावति झूँकन दै झुकि, जानि कटी [illegible] ।
चञ्चल अञ्चल धीच चलाचल, चैनी [illegible] ॥
या विधि झूलत देखि गयो, तब ते [illegible] 'देव' [illegible] ।
झूलनि है हियरा हरि को, हिय माहँ हिंडोरे [illegible] ॥

( १४ )

भूलत ना वह झूलनि लाल की, [illegible] पटी [illegible] ।
'देव' कहै लचकै कुच चंचल, [illegible] नटी [illegible] ॥
अञ्चल की फहरानि हिये, [illegible] ।
किंकिनि की झहरानि झुलावति, [illegible] ॥

( १५ )

झूलनहारी [illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] 'देव' [illegible] ।
और हिंडोरे की [illegible] ॥

( १६ )

[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥

शारद जुन्हाई जनु पूरण स्वरूप धाई,
धाई सुधा सिन्धु नभ शुभ गिरिवर ते।
उमड़ो परतु ज्योतमण्डल अखण्ड सुधा-,
मंडल मही में इन्दुमंडल विवर ते॥

( १७ )

दूध सुधा मधु सिन्धु गँभीर ते, हीर जू पै न गंभीर लै आवै।
बाल प्रवाल बला मिलि कै, मणि माणिक मोतिन ज्योति जगावै॥
तौ रजनीपति बीच विरामिनि, दामिनि दीप समीप दिखावै।
जो निज न्यारी उज्यारी करै, तब प्यारी के दन्तन की दुति पावै॥

( १८ )

'देव' कन्दर्प के दर्पण द्वै, कि सतापस तर्प्पन दर्प्प दुधा के।
केलि कला अकुलाउ न चित्त, भुलाउ न मित्त की क्षोभ सुधा के॥
गोल कपोल लसै मुख ऊपर, रूप अनूप बलै वसुधा के।
जोतिन जूह उदोत दुरूह सुधाधर, मैं कि समूह सुधा के॥

( १९ )

पूरण शारद इन्दु उदार, सुधारस धार सुधारन ती की।
स्वास सुवास को सुन्दर मन्दिर, मेड़ अमन्द सुहाग शिरी की॥
ऊपर वेंदी तरे लुरकी, इतहूँ उत वीर सुहीरन हू की।
वेसरि को मुकुता कलसै, धरि नाक लसै मधिनाप कनी की॥

( २० )

प्रेम महानद प्यारे के प्रानद, आनँद संपद आपद भंजन।
जीय गड़े उमड़े से वड़े वड़े, चंचल नैन मढ़े लघु अंजन॥

'देव' मनोज सुधाये सरोज पै, ओज के पोज मनो मनरंजन ।
चंचु चुभै पल पंख दबै पिलि, मैन दुरै मिलि खंजन खंजन ॥

( २१ )

इंदु सो आनन सुन्दर कानन, हीरन की निधि [illegible] लागी ।
'देव' जगामग ज्योति की जग, मोतिन की दुलरीन सो लागी ।
पद्म दुहूँ विकलानि कलानि, [illegible] छानि की [illegible] ।
सोने की सीसी भरी कुकुमान, कलानिधि आनि सुजानि सो दागी ॥

( २२ )

नासिका ऊपर मोहन के मधि, चंदन बिन्दु [illegible] सो जग ।
पूरन सो चंदा पखारि [illegible], [illegible] ऊर्ध्व रखा लिखि मोतिन [illegible] ॥
'देव' के नैन पलानि तुला किधौं, मान [illegible] ।
नारि हिये त्रिपुरारि देखें सुनि, तारि मैं मैन [illegible] ॥

( २३ )

( २५ )

अम्बर नील मिली कबरी, मुकुता लर दामिनि सी दशहूँ दिसि ।
ता मधि माथे में हीरा गुह्यो, सु गयो गड़ि केसन की छवि सों निसि ॥
माँग को मूल उतै सिर फूल, द्ग्यौ झमकै कनकावलि सों घिसि ।
शृंग सुमेरु मिलै रबि चंद ज्यौं, पावस मास अमावस की निसि ॥

( २६ )

है अभिमान तजे सनमान, वृथा अभिमान को मान वहैये ।
'देव' दया करै सेवक जानि, सुशील सुहाय सलोनो लहैये ॥
की सुनि के बिनु मोल बिकाय न, बोलन कोइ को मोल न हैये ।
पैये असीस लचैये जो सीस, लची रहिये तब ऊँची कहैये ॥

( २७ )

नीके हर्यो जु सरीकै सखी, सब गेह की दूसरी देह की हैारी ।
'देव' बनाय मनाय दिखावति, तू इन्हैं क्यों न सिखाति ऐरी ॥
बोलि उठै बिछिया जिभ चालये, शोर चुरी चहूँ ओर करै री ।
रंग में भंग करै कटि किंकिणि, अंग के संग लगे सब वैरी ॥

( २८ )

सुखसार सिवार सरोवर ते, शशि शीश बँधे विधि के बल सों ।
चकई चकवा तजि गंग तरंग, अनंग के जाल परे छल सों ॥
कमलाकर ते कढ़ि कानन में, कल हंस कलोलत हैं कल सों ।
चढ़ि काम के धाम ध्वजा फहरात, सुमीनन काम कहा जल सों ॥

( २९ )

ओठन ते उठि पीठि पै बैठि, उँचान पै बैठि [illegible] [illegible] [illegible] ।
देव पटासन ते कढ़ि कोप, लिलार चढ़्यौ चढ़ि भौंह मरोरनि ॥
अंक में आय मयंकमुखी लई, लाल को अंक [illegible] [illegible] ।
आँसुन बूड़ को उमाम उड़्यो किधौं, आन नदी [illegible] हिलोरनि ॥

( ३० )

है जगरी घन जीवन को तजि, जीवन जीवन को निदरै को ।
जीवन को न बिना ब्रज जीवन, जीवनमूरि को दूरि धरै को ॥
'देव' सुजीवन जीवन नाथ, उदार हैं ता बिन ध्यान धरै को ।
नाह की बाँह बिना बहिरी, गहिरी जल धार के पार परै को ॥

( ३३ )

नंद घरै वृषभान के भौन ते, जान कह्यौ हरि 'देव' सुहासुनि।
ताही घरी ते घरी पल लाज, घरी के घरी उघरी बतियाँ सुनि॥
प्रात अरंभ की खंभ लगी, निरदंभ निरंभ सम्हारै न सासुनि।
ठाढ़ी बड़े खन की बरसै, बड़री अखियान बड़े बड़े आँसुनि॥

( ३४ )

ललित लजीली आइ ललिता विसाखा सौं,
ललित नैन मूँदि कर सैनन करत फिरै।
आये व्रजचन्द चन्द्रावलि को सुनाये सुनि,
चन्द्रमुखी धाइ प्रीति पाँउड़े धरति फिरै॥
'देव' व्रज देवी देवता मनाय मन ही,
मन निछावरि ह्वै भाँवरि भरत फिरै।
गोकुल गुसायन कुँवरि ठकुरायन सौं,
गोपी गोप गायन के पाँयन परति फिरै॥

( ३५ )

आँगन वैठी सुनी पिय आवत, चित्त झरोखन मैं लरक्यो परै।
घूँघट मैं घट मैं पटहू मैं, समाति न फूलि हियो फरक्यो परै॥
नैनन ते सुख के अँसुवा मनौं, भौंर सरोजन ते सरक्यो परै।
मंद हँसै दुति दंत लसै मुख, सुंदर दाड़िम सो दरक्यो परै॥

( ३६ )

वैठी ही सुंदरि मंदिर मैं, पति को पथु पेखि पतिव्रत पोखे।
तौ लगि आये री आय कह्यौ, दुरि द्वार ते देवर दौरि अनोखे॥

आनँद ते गुर की गुरुताऊ, मानी गुन गोविन्द [illegible] ।
नुपूर पाइ उठे झननाय, सु जाय लगी धन [illegible] ॥

( ३८ )

छैल पै राखौ छिपाय कृपा में, कृपाकर की [illegible] ।
'देव जू' मोहि न लागे फिरें, [illegible] ॥
पीत पटा पहिरो है भट्ट, [illegible] नीलपटा [illegible] ।
बाँसुरी की धुनि तानन सों, ब्रज की बनिताजन [illegible] ॥

( ३९ )

आजु मिले पहले दिन आनके, [illegible] ।
ये भुज भूषण सों भुज बाँधि, [illegible] ।
दीजिए मोहिँ उठाय लगी पट, [illegible] ।
प्यारे हमैं तुम्हैं [illegible] ।

( ४० )

( ४१ )

बंक विलास निरंकुश हास, सशंक चितौनि चितै चित चैनी।
घूमि कै बाट बटोही गिरयो, लखि भूमि कै झाँकि गई दृग पैनी ॥
बुंद सुधा अरविंद निवारिए, पूरण इंदुमुखी सुखदैनी।
'देव जू' इंदिरा मंदिर की नव, सुंदरि इंदिरा मंदिर नैनी ॥

( ४२ )

भूलेहु जो दुचितो चित कीजै, न तौ उचितौ न पतीजै सभागी।
'देव' दुहूँ कुल को मुख देखि, सुखी रहियेई जऊ दुख दागी ॥
लाज सकोच अकाज सकोचन राज करो जे इन्हैं अनुरागी।
कान सुनी जे न आँखिन देखी, ते कान लगी रहैं आँखिन लागी ॥

( ४३ )

नीठिहु पीठ दई न लला, अबला के बँधे फिरै डीठि के डोरे।
तो दिन द्वैक बसे इक कोरे, कछू दुचिती सी करै दृग कोरे ॥
'देव' कहा कहिए तिनकी, गति यों न अजौं लगि जानती भोरे।
और की चाह न छाह भये, फिरै छाह न छ्वावत नाह निहोरे ॥

——

# कुशलविलास

## घनाक्षरी

( १ )

जननी के अङ्क पर्यङ्क ते निसंक पाय,
'देव' या मयङ्क मुख चन्दन चकोर ही।
झटकी मलीन हू न पटकी रंगीन चीरि,
पटकी मलीन पंचरंगि बिन चोर ही॥
नन्द जी की नन्दिनी दुबोई नन्दनन्दन की,
बरजो न मानै बर जोरि बरजोर ही।
पोषन देन बदन दिखावन दै रचि राखे,
रोपन है श्याम की कमाई निज कोर ही॥

'देव' गुरु काज लाज सखिन समाज तजि,
प्रीतम सों मिलि है सुढार ढरि ढरि कै ॥
चूमि मृदु वैन नैन पंकज मयङ्कमुखी,
घूमि घूमि रही वङ्क अङ्क भरि भरि कै ।
वारि वारि वाल मृगनैनी वाल वालम की,
विमलि वलैयाँ लै लै पैयाँ भरि भरि कै ॥

( ४ )

प्रेम को पयोद बीजुरी लै गोद चहूँ कोद,
वरस विनोद मोद आनन्द मचे परैं ।
विमलि विहङ्गम जुगुल जैसे सङ्ग सङ्ग
सरस सुरङ्ग की तरङ्गनि नचे परैं ॥
अङ्गना के अङ्ग राचे अङ्गराय अङ्ग
अङ्ग अङ्ग प्यारी के सुरङ्ग हू नचे परैं ।
ललित लजीली भौं ढीली गर्वीली,
सकुचीली के सकोचन ही लोचन लचे परैं ॥

( ५ )

कोकिल लौं कल कूजति कुंजनि, आपुस में मिलि कूजति पायन ।
लै भुज भेंटति है भरि अङ्क, मयङ्कमुखी सुचि शील सुभायन ॥
जानै को कौंधर कीन्हें कहा, नित नेम लिये चित प्रेम उपायन ।
'देव' गुविन्द की ओर चितौति, भई सचै सौति सखी सुखदायन ॥

( ६ )

चरन की दासी सौं उदास कत कीजै चित,
दरस की प्यासी द्वार देहरी ठई रहै।
दूसरी रँगीली गुन रूप गर्वीली वे,
रसीली ढोली बातनि ही गातन नई रहै ॥
'देव' अनुकूल ह्वै दुकूलनि बनावैं क्यों न,
दम्पति अटानि पै घटा सी उनई रहै।
प्रान धन जोवन जीवन उन वारेऊ,
तन मन अर्पनु कै दरपन भई रहै ॥

( ७ )

लीन्ह्यो मन मूसि मयन राख्यो सूम सूसि कौन,
दोप दै कै दूस तू सिखापन करत री।
प्रान धन जीवन हमारे जीवितेश सो,
समीप विनु देखै दीप जोत ज्यों जरति री ॥
नाँह बाँह 'गहे अपनीयै परछाईं पै,
औरै तिय लेखि रही भूल ही लरति री।
'देव' दुख मोचन रँगे ज्यों रङ्ग रोचन,
लला के लखि लोचन सकोचन मरति री ॥

( ८ )

गर्वीली वुननि लजीली ढोली भौंहनि कै,
ज्यों ज्यों नई जाति त्यों त्यों नये नेह निवई।

बीधी बात बातनि उनीधी गात गातनि,
समीधी पर्यङ्क मैं निसङ्क अङ्क हितई ॥
अँसुवन भीजी बीजी सीजी औ पसीजी,
मीजी पीजी सें पतीजी राग रंग रैन रितई ।
नाह नाह सौहैं कै हँसौहैं नेह सोहैं करी,
क्यों हू नाह सोहै ना हँसौहैं नैक चितई ॥

( ९ )

सूधी औ न टेढ़ी रस रोसु हूल वेढ़ी रहो,
आरस जनावती सुधा रस को पान कै ।
प्रेम लटपटी उनहू की अटपटी त्यों,
चाहैं चित चौगुन सराहैं गुन गान कै ॥
'देव जू' दुहूँ को दुहूँ पायो है सुभाव हम,
झूठे बोलि भाखै कौ लौ राखैं समाधान कै ।
माननी अनोखी मान ही सौं घुरी जाती कहा,
कैसे मरी जातीं मरी जातीं नैक मानकै ॥

( १० )

औड़ी चितौनि कहूँ उड़ि लागति, वन्दनि आड़ जो आड़ै न होती ।
डारतो गूँदि गुमान गयन्दु, जो गोल कपोल में गाड़ न होती ॥
रूठतीं लोक लटैं सुफुलेल, हमेल हिये भुज हाड़ न होती ।
इन्दु अचानक च्वै पड़तो, मुखचन्द चितै जु पै चाड़ न होती ॥

( ११ )

रैहैं भराई न राई भरी, कोई भौंहैं चढ़ाय चितैहैं सरोसैं।
वूझि समो व्रज लाड़ली सों, हरि वोभ की वात कही निरजोसैं॥
'देव' कहा भयो जो कबहूँ, भुजि मेल कहूँ उनके गल गोसैं।
देखौं कहूँ दुरि दूरि भये, अव वे नहिं वे जिनके हौं भरोसैं॥

( १२ )

सापने की सौतुक श्रौ सोवत को जागत ही,
जानि न परति रोम रोम ररकत री।
वङ्क दृग वदन मयङ्क वारे अङ्क भरि,
अङ्क ए ससङ्क पर्यङ्क थरकत री॥
'देव' गति गूढ़ ढिग ढूँढ़त न पायो विन,
मृग ज्यों मृगी के दृग आँसू ढरकत री।
याही छिन छोभ भरी छतियाँ बिछोह वाके,
कर धरि देखु तू करेजे करकत री॥

( १३ )

भाग भरे आनन अनूप दाग शीतला के,
'देव' अनुराग झँझरी से झगकत हैं।
उड़िकै निगोड़ी दीठि गड़ि गड़ि गाढ़े परी,
उमड़ि उमड़ि आढ़ें लोग लमकत हैं॥
जोवन किसान मुख खेत रूप वीज वीजे,
चारु सुधा वुन्दनि अनन्द दमकत हैं।

वदन के वेभे पै मदन कमनैती के,
चुटारे सर चोटनि चटा से चमकत हैं ॥

( १४ )

पानी की पठौन हारि निपट कठिन नारि,
देउँ कहा गारि तोही राखती सिंगारि कै ।
ए री पनिहारी 'देव' तेरी मनुहारि करौं,
नेक ही निहारि हरि गयो हिय हारि कै ॥
पनघट पारि लौं क्यों आई बटपारि सुख-
मारि जे सलोनी दारो तापै सब वारि कै ।
हूँ घट सम्हारि अब हूँ घटि सम्हारति न,
तू घट सम्हारि कु घूँघुट सँभारि कै ॥

( १५ )

तरुनी तरलनयनी वरुणीतिमिर,
अरुनाधर मधुर दुत दूनी दुज भूप सौं ।
उदित अनङ्ग रवि रङ्ग रँगमगी कवि,
'देव' जगमगी नौ जोबन अनूप सौं ॥
ऊचे कुच गिरि ते गिरो फिर न फिर्‌यौ तीर,
तिवली तरङ्गनि गही नाभि कूप सौं ।
लै गई सुजनि भानि उरजि मजेज माँज,
अंजन सो आँजि मनु राँजि रुचि रूप सौं ॥

( १६ )

जिनके अनूप रूप सिन्धु ब्रज गोरिन के,
लाज के जहाज गुनि गहे गहिरात है।
भये सुर लीन सुनि मुरली सुरनि धुनि,
धुनि धुनि सीस मुनि ईस न थिरात है॥
तेई सन्मुख मुख सोहै ह्वै हँसोहे रस,
लालच ही लाल चित लुर लुर जात है।
'देव' दुखमोचन सलोनी मृगलोचनि,
तो देखि देखो लोचन लला के ललचात है॥

( १७ )

कैसो किसोरी को केसरि सो तनु, केस बड़े बड़े नीर निचोवै।
हाँसी सुधा सी सुधानिधि सो मुख, माँग के मोतिन मैल मिलोवै॥
कान अहो धरि राखौ न होय, हनै हू नखौ जो सुनै सुख खोवै।
रांधे सी रूप उजागरि नागरि, सो गुन आगरि गागरि ढोवै॥

( १८ )

काढ़ि पियूख पियूख मयूख, मिले मदिरा बिनु बोइ नदी में।
'देव' गऊ सुर-रूख धनन्तरि, साहस सन्नुहि न्योतिन ही में॥
रानी रमा गहि आनि जपै, सुर है गज रम्भ कहो किन ही में।
छैल छिपे रह्यौ छील समुद्र, न छार समुद्र करो छिन ही में॥

( १९ )

प्रेम पियूख पियो मुख जो, मुख मानि है तौ विष को अभिलाखिन।
'देव' वियोग के भोग भरी, सु वृथा अब जोग कथा कहु भाखिन॥

जो निकरे ब्रज ते तौ कहा, हरि पै हिरदै ते कढ़े कहुँ ना खिन।
आँखिन ओट करैं जनि राखि, करेजिन छेद करे जिन आँखिन॥

( २० )

कठिन कुठाठ काठ कुंठित कुठार कूठ,
रूठी हठ कोठरी कपाट कपटन की।
चीकनी सोहाग नेह हमकी सराग पर,
प्रेम पाँव परत न राह रपटन की॥
बर तनु बरत उबारिए लुरव बारि,
वारिए न बिरह दवारि झपटन की।
'देव जू' विदेह दाह देह दहकत आवै,
आँच लपटनि ओत आँच लपटन की॥

( २१ )

वा नँदगाँव को साँवरो सो कछु, नीको सुनाऊँ सुन्यो मैं नितै हीं।
'देव' कहा कहूँ देखत ही बनै, देखौं तितै तितै जात जितै हीं॥
आजु अभैही इहाँ ही हौं भौर ते, देखो री दूरि दुरयो है कितै हीं।
चंचल दीठ मैं ढीठ चुभै, चित चोरि लियो चितचोर चितै हीं॥

( २२ )

आलि अहे मृग-बाल-विलोचनि, मो दुख मोचन रूप तिहारो।
सुन्दरि चन्द्रमुखी प्रियबादिनी, बोलती बोल सो प्राण ते प्यारो॥
मो मब भाँति भई हौं भटू, सखियान करो अँखियान को तारो।
वा नँदगाँव में साँवरो सो जू, तिहारी उन्हारि हितू है हमारो॥

( २३ )

जोवन भानु नहीं उद्यो ससि, सय सबहू को प्रकास न ऊनो।
ज्यों हरदी पहरीं पियराई, जुन्हाई को रूप भयो मिलि घूनो॥
'देव' रचो अँग अङ्गनि रङ्ग, वढ्यो सु सयानु अयानु न लूनो।
वैस वराबरि दोऊ सुहात, सु गोरी कु गातु प्रभात सो पूनो॥

( २४ )

सोन सरोज कलीन के खोज, उरोजनि को उर रोज निहारो।
'देव जू' बाढ़त ओप घरी पल, त्यों ही नितम्ब भयो कछु भारो॥
कानन की ढिग ह्वै दृग दौरति, चातुरी चाऊ चयाव पसारो।
दाब्यो दुहूनि दुहूँ दिसि ते, सुभयो दयि दूबरो लङ्क विचारो॥

( २५ )

पी के सनेह सखी के प्रपञ्च, पची पहिले पति प्रीत धुरी सी।
दूसरी देव तनीनु जनी, रजनी रस की सजनी निठुरी सी॥
भाग भरी अनुराग सुहाग की, लाग लगी लरिकाई लुरी सी।
लाज मैं प्रेम पगी बतियाँ, लगी सौतनि की छतियान छुरी सी॥

( २६ )

प्यारे के प्यार सों पइए सुहाग, सो न्यारे भये नित नेह निहोरिए।
जा सुख सङ्ग को अङ्ग सिंगारिये, तासों विगारिये क्यों विष बोरिए॥
जासों बँध्यो धन जोवन जीवन, 'देव' तहीं चित दै हित जोरिए।
तेरेई गोहन लाग्यो फिरै, मनमोहन सों भरो भौंह न मोरिए॥

( २७ )

बाजी चलै रसना रसनाद सुनूपुर, भोग की भूपर मारै।
ओज के तान मनोज के मान सों, ओज के गान गरे अनुसारै॥
लाज लुटी छिन एक छुटी लट, 'देव' कटाक्ष कुटीर के द्वारे।
प्रेम पुटी पटी जोग जुटी, सुनटी सुनटी भ्रुकुटी के अखारे॥

( २८ )

तिल तिल रूप की तिलोत्तमा न तूल जाके,
अति ही अतूलनि की बनी ही कुँवारी सी।
परिमल मूलनि दुकूलनि में मिल रही,
फूलनि बसाई फूलि फूली फुलवारी सी॥
हेमँत हसन्ती सी वसन्तमय वसन्ती रितु,
ग्रीषम की ऊखम पियूख सुखकारी सी।
'देव' कामदेव दुख दुसह दवागिन की,
आँच लगे हिय में हिमंचल बयारी सी॥

( २९ )

संकेत सदन 'देव' मदन बिलास बिधु-
बदनी बदन दोऊ दुहुनि भरे गोदनि।
त्रिविध समीरन चकोर भौंर-भीर मैं,
छीरनिधि बीछित में छाई छित छिरोदनि॥
केतकी रजनि अरगजनि मधुर मधु,
राका की रजनि राजैं रंजित चहूँ कुदनि।

वृन्दावन बीच मृदु मन्दार विनोद मोद,
मन्दिर बसायो मृग मेदनी के आमोदनि ॥

( ३० )

फूलन की सेज पै दुकूलनि सँभारति न,
खुले भुजमूलनि लता से लहराइयत।
बिथुरी न जानै पिकबैनी बड़ी बेनी टूटि,
हारन ते छूटि छित मोती छहराइयत ॥
पीयुख मयूख मुख पीयुख निचोरि कै,
सुगन्ध वारि बोरि पटु पौन फहराइयत।
श्रम के हरन सुखदेनी के सुख करन,
सखी कर चरन सरोज सहराइयत ॥

( ३१ )

चढ़ि कै कदम्ब पै दिगम्बर पै अम्बर ज,
उजारें हरि लीने हरि हरि कै।
बार न लगाई नाँगी बारि ते निकसि देऊ,
बरु बरियाई बरियाई बरि बरि कै ॥
मै न बलबीर बलवीरी की सौं देखें गैल,
गैल ऐल पारी मेरी गैल परि परि कै।
हारी कर जोरि बरजों री काहि काहि ब्रज,
बैरी बैर पर्‌यो बरजोरी करि करि कै ॥

( ३२ )

बङ्क विलास निरंकुस हास, ससङ्क चितौनि चितै चित चैनी ।
घूमि के बाट वटोही गिर्यो, लखि भूमि के झाँक गई दृग पैनी ॥
बुन्द सुधा अरि बिन्दु निवारिए, पूरन इन्दुमुखी सुख दैनी ।
'देव जू' इन्दिरा मन्दिर की, नौ सुन्दरी इन्दिरा मन्दिर नैनी ॥

( ३३ )

सखी काल की छोहरी छैल भई, छिपि गैल हैं। जानति जात जहाँ तू ।
कौन भुलाई डुलाई तैं दीठ तैं, पीठ चली तज ईठ तहाँ तू ॥
हां कवि की बकवाद बकी थकि, 'देव जू' बोलत नाहीं न हाँ तू ।
बातनि देव बितौति तू सौति, अजौं बिख बौति चितौति कहाँ तू ॥

( ३४ )

राधे की गुपित प्रेम रस सों रसाने कान्ह,
आये बरसाने ग्वाल बालनि बिसारि कै ।
बाँसुरी बजाई गाइ बिरह जगाय,
ललिता सों लौ लगाय लङ्गर बिचारि कै ॥
सोई सुनि सुनि धुनि सीस धुनि धाई उर,
आनँद बधाई गुरजननि सों रारि कै ।
आँसू दृग ढारिकै बिदारिकै सखीन आई,
नेह सो निहारि 'देव' तनु मनु वारि कै ॥

( ३५ )

बीतो परै नहीं बीतो चबाइनी, देखत पीठ दै दीठि कै पैनी ।
चौंकि चितै चितवै चहुँ ओर, चलाचल चंचल चित्त अचैनी ॥

चाहत 'देव' दुरै दुलही, सुखदानि को आनि मिल्यो सुखदैनी।
भूलि परी मृग को मगु चाहि, भई मृगया की मृगी मृगनैनी॥

( ३६ )

सखि क्यों अकुलाई दुलाई कै धीरजु, बैठी भुलाई कला रस केली की।
पौरि लौं दौरि पढ़ाई सुवाइन, आँसुन लोलति धील सहेली की॥
'देव' इतै बलि लेन चले अलि, चाँचर आँचरि वेलि नवेली की।
पौरु अगोंनू पठायो सँदेश, दै लाल को आवनु माल चमेली की॥

( ३७ )

वारन देत किवार अवारहू, तोसों मैं बार हजार कही री।
फूल विथोरे दुकूलनि छोरि लै, भावत मोहि बयार न सीरी॥
'देव' कहाँ लौं गिनौ उनके गुन, सोसु धुनो न सुनौ धुन ए री।
दारि दे मौंधे बिदारि दे लौंड़ी हो, गारि दै चेलो बिगारि दै चोरी॥

( ३८ )

वैरिनि जीभहिं तीभ दै री, मन वैरी कौ मीज कै मौन धरौगी।
जानै को 'देव' कहा भयो मोहिं, लरी कहैं लोग कहा लौं मरौगी॥
प्रानपती सुख सर्वस वे, उनसों गुन रूप को गर्व करौगी।
अंजलि जोरि निहोरि गरे परि, औ हरि प्यारे के पाँव परौगी॥

( ३९ )

चैतु चितै दिन चारिक फूली, लता झरि झूरी निमूली सी हेरे।
भौंर भरोमे भिरैं सबही सों, घिरैं सब हीं के घिरैं नहि घेरे॥
'देव' अहो बलि हौं बलिहारी, तिहारी सी प्रीति निहारी न नेरे।
दाह बुझाई सुझाई दिखाई, सुहाई भली समुझाई सबेरे॥

## स्फुट कविता

( १ )

पाँयन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मन्द हँसी मुख चंद जुन्हाई।
जै जग मंदिर दीपक सुंदर, श्री बृज दूलह 'देव' सहाई॥

( २ )

गंग तरंगनि बीच बरंगनि, ठाढ़ी करै जपु रूप उदोती।
'देव' दिवाकर की किरनै, निकसै बिकसै मुख पंकज जोती॥
नीर भरी निचुरै अलकै, छुटि कै छलकै मनो माँग के मोती।
बिज्जुलि से झलके लपटे कन, कज्जल से अँग उज्जल धोती॥

( ३ )

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि, अंगनि ओप मनो उफनी।
'कवि देव' हिये सियरानी सबै, सियरानी को देखि सुहागसनी॥
बर धामन बाम चढ़ी बरसै, मुसुकानि सुधा घनसार घनी।
सखियानि के आनन-इंदुन ते, अँखियानि की बंदनवार तनी॥

( ४ )

स्याम के संग सदा हम डोलैं, जहाँ पिक बोलैं अलीगन गुंजैं।
लाहनि माह उछाहनि सो, छहरै जहँ पीरी पराग की पुंजैं॥

बोलनि मैं रस केलिन मैं, 'कवि देव' कछू चित की गति लुंजै।
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते, फूलती मंजुल बंजुल कुंजै॥

( ५ )

सँजोगिन की तू हरै उर पीर, वियोगिनि के सचरे उर पीर।
कलीन खिलाइ करै मधु पान, गलीन भरै मधुपान की भीर॥
नचै मिलि बेलि वधूनि अचै, सुर 'देव' नचावति आधि अधीर।
तिहू गुन देखिए दोप भरो, अरे सीतल मंद सुगंध समीर॥

( ६ )

कातिक पून्यो की राति ससी, दिसि पूरब अंबर में जिय जान्यो।
चित्त भ्रम्यो पुमनिंदु मनिंदु, उठ्यो भ्रम ही सो भुलान्यो॥
'देव' कछू बिसवास नहीं, सोई पुंज प्रकास अकास में तान्यो।
रूप-सुधा अँखियानि अँचै, निहचै मुख राधिका को पहिचान्यो॥

( ७ )

सुनि कै धुनि चातक मोरनि की, चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागनि मैं, सखि रागत राग अचूकनि सों॥
कवि 'देव' घटा उनई जु नई, वनभूमि भई दल दूकनि सों।
रँगराती हरी हहराती लता, झुकि जाती समीर के झूकनि सों॥

( ८ )

आली झुलावति झूँकनि सों, झुकि जात कटी भननाति भकोरे।
चंचल अंचल की चपला, चलवेनी घड़ी सो गड़ी चित चोरे॥
या विधि झूलत देखि गयो, तब ते कवि 'देव' सनेह के जोरे।
झूलत है हियरा हरि को, हिय माहिँ तिहारे हरा के हिँडोरे॥

( ९ )

आई वसंत लग्यो वर सावन, नैनन ते सरिता उमहै री।
कौ लगि जीव छमावै छपा, मैं छपाकर की छवि छाई रहै री॥
चंदन सों छिरके छतिया, अति आगि उठे उर कौन सहै री।
सीतल मंद सुगंध समीर, वहै दिन दूगुन देह दहै री॥

( १० )

फूले अनारनि पाँडर डारनि, देखत 'देव' महाडरु साँचे।
माधुरी भौरनि अंब के बौरनि भौंरनि के गन मंत्र से बाँचे॥
लागि उड़ै विहागिनि की कचनारनि बीच अचानक आँचे।
साँच हुँकारि पुकारि पिकी कहै नाच वनैगी वसंत की पाँचे॥

( ११ )

लोग लुगाइन होरी लगाई, मिलामिली चारु न भेटत ही बन्यो।
'देवजू' चंदन चूर कपूर, लिलारनि लै लै लपेटत ही बन्यो॥
वे रवहि औसर आये इतै, समुहाई हियो न समेटत ही बन्यो।
कीनी अनाकिनि मैं मुख मोरि, पै जोरि भुजा भटू भेटत ही बन्यो॥

( १२ )

राधिका सी सुर सिद्ध सुता, नर नाग सुता 'कवि देव' न भू पर।
चंद करौं मुख देखि निछावरि, केहरि कोटि लटौ कटि हू पर॥
काम कमान हूँ को भृकुटीन पै, मीन मृगीनहू को दृग दू पर।
वारौं री कंचन-कंज-कली, पिकवैनी के थोंडे उरोजन ऊपर॥

( १३ )

खंजन मीन मृगीन की छीनी, दृगंचल चंचलता निमिखा की।
'देव' मयंक के अंक की पंक, निसंक लै कज्जल लीक लिखा की॥
कान्ह वसी अँखियान विषे, विसफूरति वीस विसे विसिखा की।
दीपति मैन-महीप लिखाई, समीप सिखा गहि दीप-सिखा की॥

( १४ )

कोयन ज्योति चहूँ चपला, सुर-चाप सुभ्रू रुचि कज्जल कादो।
बुंद बड़े बरसैं अँसुआ, हिरदै न वसै निरदै पति जादो॥
'देव' समीर नहीं दुनिए, धुनिए सुनिए कलकंठ निनादो।
तारे खुले न घिरी बरुनी, घन नैन भये दोउ सावन भादो॥

( १५ )

धार मैं धाई धँसी निरधार ह्वै, जाय फँसी उकसी न अवेरी।
री अँगिराई गिरीं गहिरी, गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपनो बसु ना, रसु लालच लाल चितै भईं चेरी।
वेगि ही बूड़ि गईं पँखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥

( १६ )

काननि कोननि कूदि फिरैं, करि सौतिन के उर खेन की खूँदनि।
'देव' जू दौरि मिले ठगि ज्यों, मृग जे न फँदे फँदवार के फूँदनि॥
घूँघट के घट की नटकी, नु छुटी लटकी लट की गुन गूँदनि।
केहूँ कहूँ न छुरै विछुरैं, विचरैं न चुरैं निचुरैं जल बूँदनि॥

( १७ )

पूरन प्रेम सुधा वसुधा, वसु धार भई वसुधार सुरेखी।
जीवन या ब्रज जीवन की, ब्रज जीवन जीवन मूरि विसेखी॥
तू परमावधि रूप रमा, परमानँद को परमानँद पेखी।
नेह भरी नख ते सिख 'देव', सुदेह धरे ससि-मूरति देखी॥

( १८ )

सोधि सुधारि सुधा धरि 'देव', रची नख ते सिख सुद्ध ससी सी।
सोने मे रंग सलोने-से अंगन, कौने न नैन कसौटी कसी सी॥
ही के बुझै सब ही के सताय सु, सौतिन को असराप असी सी।
भावती हौ हित ही की हितू भई, आवती हौं अँखियानि बसी सी॥

( १९ )

अंबर नील मिली कबरी, मुकुता-लर दामिनि-सी दसहूँ दिसि।
ता मधि माथे में हीरा गुह्यो, सु गयो गढ़ि केसन की छबि सों लिसि॥
मांग के मूल बनो सिर फूल, ढ्‌यो झमकैं कनकावलि सों घिसि।
शृंग सुमेरु मिले रवि-चंद ज्यों, पावस मास अमावस की निसि॥

( २० )

आँड़ी चितौनि कहूँ उड़ि लागती, चंदन आड़ जो आड़ न होती।
टारती बूँदि गुमान गयंदु जो, गोल कपोलनि गाड़ न होती॥
तूटती लोनु लटैं सफुल्लत, हमेल हिये भुज टाढ़ न होती।
चंदु अचानक च्वै परतो, मुखचंदु पै जो चित चाड़ न होती॥

( २१ )

ईंगुर सो रँग एँड़िन बीच, भरी अँगुरी अति कोमलतायनि।
चंदन-विन्दु मनौ दमकैं, नख 'देव' चुनी चमकैं ज्यों सुभायनि॥
वंदत नन्दकुमार तिहारेई, राधे वधू ब्रज की ठकुरायनि।
नूपुर-संजुत मंजु मनोहर, जावक-रंजित कंज से पायनि॥

( २२ )

प्यारी सकेत सिधारी सखी सँग, स्याम के काम सँदेसनि के सुख।
सूनौ इतै रँगभौन चितै चित, मौन रही चकि चौंकि चहूँ रुख।
एक ही बार रही जकि ज्यों, त्यों भौंहनि तानि कै मानि महा दुख॥
'देव' कछू रद बीरी दै बीरी, सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख॥

( २३ )

पहिले सुनि राख्यौ हो भाख्यो सखी, रस चाख्यो अचानक कान पुटी।
लखि चित्र-चरित्र लख्यो सपने, अब तौ खिन आँखिन आँख जुटी॥
उमग्यो मनु 'देव' लग्यो पनु सो, गुरु बंधुनि की धन-रासि लुटी।
कुल-कानि की गाँठि तें छूट्यो हियो, हिय ते कुल-कानि की गाँठि छुटी॥

( २४ )

आँखिन आँख लगाये रहैं, सुनिए धुनि कानन की सुखकारी।
'देव' रही हिय में घरु कै, न रुकै निसरै विसरै न बिसारी॥
फूल में बासु ज्यों मूल सुबासु की, हैं फल फूलि रही फुलवारी।
प्यारी उज्यारी हिये भरि पूरि है, दूरि न जीवन-मूरि हमारी॥

( २४ )

जेठी बड़ी ते अमेठी सी भौंहनि रूछ, महा मन सूछम सीछैं ।
'देव जू' बातनि ही सों हितोति,सो, सौति सखी सुचितौति तिरीछैं ॥
लाज की आँचन या चित राच न, नाच नचाई हौं नेह न छीछैं ।
चाह भई फिरौं या चित मेरे कि, छाँह भई फिरौं नाह के पीछैं ॥

( २५ )

पीछे तिरीछे कटाच्छन सों, इत वै चितवैं री लला ललचौहैं ।
चौगुनो चाउ चबायनि के चित, चाह चढ़े हैं चवाउ मचौहैं ॥
जोबन आयो न पाप लग्यो, कवि 'देव' रहैं गुरु लोग रिसौहैं ।
जी में लजैए जु जैए कहूँ, तित पैये कलंक चितैए जु सौहैं ॥

( २६ )

पीर सही घर ही में रहो कवि 'देव' दियो नहिं दूतिन को दुख ।
काहु की बात कही न सुनी, मनु मारि बिसारि दियो सिगरो सुख ॥
भीर में भूलि कहूँ सखि मैं, जब ते ब्रजराज की ओर कियो रुख ।
मोहिं भटू तब ते निमि-द्रोम, चितौन ही जान चबाइन के मुख ॥

( २७ )

काहू की कोई कहावति हौं नहिं, जाति न पाँति न जाते खसौंगी ।
सोचिये हास करौ किन लोग हौं, को कवि 'देव जू' काहि हँसौंगी ॥
गोकुल चन्द की चेरी चकोरी है, मंद हँसी मृदु फंद फँसौंगी ।
मेरी न थान बसौ बसि कोई, हौं बावरी है ब्रज-बीच बसौंगी ॥

( २८ )

जागत जागत खीन भई, अब लागत संग सखीन को भारो।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो बिसे बीस बिसारो॥
तौ सुधि दौस गँवावति 'देव जू', जामिनि जाय मनौ जुग चारो।
नीरज नैन निहारिए नैनन, धीरज राखत ध्यान तिहारो॥

( २९ )

पहिले सतराय रिसाय सखी, यदुराय पै पाय गहाइए तौ।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक, बड़े खिन लौं उर लाइए तौ॥
अपनो दुख औरन कौ उपहास, सबै कवि 'देव' बताइए तौ।
घनस्यामहि नेकहुँ एक घरी को, इहाँ लगि जो करि पाइए तौ॥

( ३० )

सुखसार सिवार सरोवर ते, ससि सीस बँधे विधि के बल सों।
चकई चकवा तजि गंग तरंग, अनंग के जाल परे छल सों॥
कमला करके कढ़ि कानन में, कल हंस कलोलत हैं कल सों।
चढ़ि काम के धाम ध्वजा फहरात, सुमीनन काम कहा जल सों॥

( ३१ )

अरिकै वह आज अकेले गई, खरिकै हरिकै गुन रूप लुही।
उनहू अपनो पहिराय हरा, मुसक्याय कै गाय कै गाय दुही॥
कवि 'देव' कह्यो किन कोई कछू, तब ते उनके अनुराग छुही।
सब ही सों यहै कहै बाल-बधू, यह देखु री माल गोपाल गुही॥

( २४ )

जेठी बड़ी ते अमेठी सी भौंहनि रूछ, महा मन सूछम सीछैं ।
'देव जू' बातनि ही सों हितौति,सी, सौति सखी सुचितौति तिरीछैं ॥
लाज की आँचन या चित राच न, नाच नचाई हौं नेह न छीछैं ।
चाह भई फिरौं या चित मेरे कि, छाँह भई फिरौं नाह के पीछैं ॥

( २५ )

पीछे तिरीछे कटाच्छन सों, इत वै चितवैं री लला ललचोहैं ।
चौगुनो चाउ चबाबनि के चित, चाह चढ़े हैं चवाउ मचोहैं ॥
जोबन आयो न पाप लग्यो, कवि 'देव' रहैं गुरु लोग रिसौहैं ।
जी मैं लजैए जु जैए कहूँ, तित पैये कलंक चितैए जु सोहैं ॥

( २६ )

पीर सही घर ही में रही कवि 'देव' दियो नहिं दूतिन को दुख ।
काहू की बात कही न सुनी, मनु मारि बिसारि दियो सिगरो सुख ॥
भौर मैं भूलि कहूँ सखि मैं, जब ते ब्रजराज की ओर कियो रुख ।
मोहि भटू तब ते निसि-द्यौस, चितौन ही जात चबाइन के मुख ॥

( २७ )

काहू की कोई कहावति हौं नहिं, जाति न पाँति न जाते खसौंगी ।
कोरिये दाम करो किन लोग हौं, को कवि 'देव जू' काहि हँसौंगी ॥
गोकुल चन्द की चेरी चकोरी हौं, मंद हँसी मृदु फंद फँसौंगी ।
मेरो न मान कहौ अलि कोई, हौं बावरी ह्वै ब्रज-बीच बसौंगी ॥

( २८ )

जागत जागत खीन भईं, अब लागत संग सखीन को भारो।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो बिसे बीस बिसारो॥
तौ सुधि दौस गँवावति 'देव जू', जामिनि जाय मनो जुग चारो।
नीरज नैन निहारिए नैनन, धीरज राखत ध्यान तिहारो॥

( २९ )

पहिले सतराय रिसाय सखी, यदुराय पै पाय गहाइए तौ।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक, बड़े खिन लौं उर लाइए तौ॥
अपनो दुख औरन को उपहास, सबै कवि 'देव' बताइए तौ।
घनस्यामहि नेकहुँ एक घरी को, इहाँ लगि जो करि पाइए तौ॥

( ३० )

सुखसार सिवार सरोवर ते, ससि सीस बँधे विधि के बल सों।
चकई चकवा तजि गंग तरंग, अनंग के जाल परे छल सों॥
कमला करके कढ़ि कानन में, कल हंस कलोलत हैं कल सों।
चढ़ि काम के धाम ध्वजा फहरात, सुमीनन काम कहाँ जल सों॥

( ३१ )

अरिकै वह आज अकेले गई, खरिकै हरिकै गुन रूप लुही।
उनहू अपनो पहिराय हरा, मुसक्याय कै गाय कै गाय दुही॥
कवि 'देव' कहो किन कोई कछू, तब ते उनके अनुराग छुही।
सब ही सों यहै कहै बाल-वधू, यह देखु री माल गोपाल गुही॥

( ३२ )

आँखिमिहीचनि खेलत मोहिं, दुहूँ विधि सोच कहूँ नटि जाइ न ।
चोर ह्वै सोर कै नन्दकिसोर री, जाइ छिपै पै कहूँ सटि जाइ न ॥
नैन मिहीचौं जु पै उनके, तजि लाज सनेह कहूँ हटि जाइ न ।
नाथ हा ! हाथ सरोज से गेरे, करेरे कटाच्छ कहूँ कटि जाय न ॥

( ३३ )

गोत-गुमान उतै इत प्रीति, सुचादरि सी अँखियान पै खैंची ।
टूटै न कानि दुहूँ दुखदानि, की 'देव जू' हौं दुहुँ ओर ते ऐंची ॥
सील लटो न हियो पलटो, प्रगटी सु निरंतर अंतर कैंची ।
या मन मेरे अनेरे दलाल है, हौं नँदलाल के हाथ लौ बैंची ॥

( ३४ )

जीभ कुजाति न नेकु लजाति, गनै कुल-जाति न बात कह्यो करै ।
'देव' नयो हिय नेह लगाय, विदेह की आँचन देह दह्यो करै ॥
जीव अजान न जानत जान, जो मैन अयान के ध्यान रह्यो करै ।
काहे को मेरो कहावत मेरो जु, पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै ॥

( ३५ )

आई नहीं तन में तरुनाई, भई नहिं स्याम के संग सँयोगिनि ।
कौन सिखाई धौं सीख कहा, सुमिरै धरि ध्यान मनो जुग जोगिनि ॥
भोजन भाग न हास विलास, उसास भरै मनो दीरघ रोगिनि ।
आँखिन ते असुआ नहिं सूखत, एकहि बार ह्वै बैठी वियोगिनि ।

( ३६ )

घोर लगै घर वाहिर हू उर, नूतन नूत दवागि जरे से।
रंगित भीतिन भीति लगै, लखि रंग मही रन रंग ढरे से॥
धूम घटागर धूपन की, निकसैं नव जालन व्याल भरे से।
जे गिरि-कन्दर-से मन-मन्दिर, आज अहो उजरे उजरे से॥

( ३७ )

पून्यो प्रकास उदो उकसाइ कै, आस हूँ पास वसाइ अमावस।
दै गये चित्त मैं सोच-विचार, सु लै गये नींद छुधा वल वावस॥
है उत 'देव' वसंत सदा, इत है उत है हिय कंप महावस।
दै सिसिरो निसि ग्रीपम के, दिन आखिन राखि गये रितु पावस॥

( ३८ )

ना यहु नन्द को मंदिर है, वृपभान कौ भौन कहा जकती हौ।
हौं ही कि ह्याँ तुम ही कवि 'देव जू', काहि धौं घूँघट कै तकती हौ॥
भेटती मोहि भट्ट केहि कारन, कौन की धौं छवि सो छकती हौ।
कैसे भई हौं कहौ किन कैसे हूँ, कान्ह कहाँ हैं कहाँ वकती हौ॥

( ३९ )

'देव' जु पै चित चाहिए नाह, तौ देह निवाहिए देह मरयो परै।
त्यों समुझाय समुझाइए राह, अमारग जो पग धोखे धरयो परै॥
नीके में फीके है आंसू भरो, कत ऊँची उसास गरो क्यों भरयो परै।
रावरो रूप पियो अँखियान, भरयो सुभरयो उवरयो ढुरयो परै॥

( ४० )

पूतना को पय पान करो मनु, पूत-नाते विमवाम वगाहत ।
'देव' कहा कहौं मातु-पिता-हित-बन्धुन सों हितु नीके निबाहत ॥
कारे हौ कान्ह निकारे हौ कीलि, रहे गुन लीलि पै औगुन थाहत ।
पन्नग की मनि कीन्हे तुम्हैं, तुम पन्नग की किचुलीं कियो चाहत ॥

( ४१ )

रावरे पाँयन ओट लसै, पग गूजरी वार महावर ढारे ।
सारी असावरी की झलकै, छलकै छवि घाँघरे घूम घुमारे ॥
आओ जु आओ दुराओ न मोहू, सु 'देव जू' चन्द दुरै न अँध्यारे ।
देखौ हौ कौन सी छैल छिपाई, तिरीछे हँसै वह पीछे तिहारे ॥

( ४२ )

बैठी कहा धरि मौन भटू, रँगभौन तुम्हैं बिन लागत सूनो ।
चातक लौं तुम ही ररि 'देव', चकोर भयो चिनगी करि चूनो ॥
साँझ सुहाग की मांझ उदौ, करि माँनि सरोजन को वन लूनो ।
पायस तें उठि कीजिए चैन, अमावस तें उठि कीजिए पूनो ॥

( ४३ )

चोरि लगै चहूँ ओर चितौनु, कलंक लगै मग में पगु दैगी ।
दंतनि दाबि रहौ अँगुरी, अँगुरी कहुँ नेकु जु पै उघरैगी ॥
'देव' दुरै रहिए हँसिए नहिं, बैरनि बैन किये जग बैरी ।
जौ न रिसै रहिए घर मैं, तौ चलै बिधि आवन है पर गैरी ॥

( ४४ )

आई हौं देखि वधू इक 'देव', सु देखितै भूली सबै सुधि मेरी।
राख्यो न रूप कछू विधि के, घर लाई है लूटि लुनाई की ढेरी॥
येवी अबै वहि ऐवे हैं वैस, मरैंगी हराहरु घूँटि घनेरी।
जे जे गनी गुनि-आगरि नागरि, ह्वैहैं ते वाके चितौति की चेरी॥

( ४५ )

नारि जु वारिज सी विकसी रहै, प्रेम कसी पिक-सी कल कूजै।
जा वड़ भाग के भौन वसी, तेहि पीतम के चलि कै पग छूजै॥
और कहा कहिए तेहि द्वार की, दासी है 'देव' उदास न हूजै।
आँखिन को सुख सुन्दरि को, मुख दीखत हू दिख साध न पूजै॥

( ४६ )

बूझै वड़े ववा नंद को वंस, जसोमति माय को मायको बूझत।
वोलत वातैं वड़ी घन मैं, मन मैं वृषभानु ववा सों अरूझत॥
'देव' दवीं हम नेह के नाते, न तौ पुरिखा इन वातन जूझत।
जीभ सम्हारि न काढ़त गारि हो, ग्वारि गँवारि हमैं हरो बूझत॥

( ४७ )

प्रानपती के पयान प्रभात, प्रभाकर कोटि हुतो प्रतिकूल सों।
रैहैं क्यों प्रान प्रलै पहिले दिन, दूसरो दौन दसा दुख-मूल सों॥
नेह रच्यो विरहागि तच्यो, प्रिय-प्रेम पच्यो पजरै तन-तूल सों।
सासनि दूखि उसासनि रूखि, गयो मुख सूखि गुलाब के फूल सों॥

( ४८ )

प्रान से प्रान-पती सो निरंतर, अंतर-अंतर पारत है री।
'देव' कहा कहौं वाहेर हूँ, घर वाहर हूँ रहै भौंह तरेरी॥
लाज न लागति लाज अहे, मोंहि जानी मैं आज अकाजिनि ए री।
देखन दे हरि को भरि नैन, घरी किनि एक सरीकिनि मेरी॥

( ४९ )

साँझ ही स्याम को लेन गई, सु वसी वन में सव यामिनि जाय कै।
सीरी वयारि छिदे अधरा, उरझो उर झाँखर झार मँझाय कै॥
तेरीसि को करिहै करतूति, हुती करिवे सु करी तैं वनाय कै।
भोर ही आई भटू इत मो, दुखदाइन काज इतो दुख पाय कै॥

( ५० )

पातरे अंग उड़ै विन पंखन, कोमल वानि चवानि विरी की।
जोवन रूप अनूप निहारि कै, लाज मरै निधि राजसिरी की॥
कौंल से नैन कलानिधि सों मुख, कोटि कला गुन की गहिरी की।
वाँस के सीस अकास पै नाचति, को न छक्यो छवि सोनचिरी की॥

( ५१ )

माखन सो मन दूध सो जोवन, है दधि ते अधिकै उर ईठी।
जा छवि आगे छपाकर छाछ, विलोकि सुधा वसुधा सव सीठी॥
नैनन नेह चुवै कहि 'देव', वुझावति वैन वियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहो, कहौ क्यों न लगै मनमोहनै मीठी॥

---